खंड 3

उत्पादन, वितरण एवं खपत की प्रणालियाँ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 शिकार करना और भोजन एकत्रित करना*

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 शिकार करना तथा भोजन एकत्रित करना

6.3 शिकार करने और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों की विशेषताएं

- 6.3.1 परिवार एक प्राथमिक इकाई
- 6.3.2 विशाल क्षेत्र
- 6.3.3 मुखिया – एक वैधानिक अधिपति
- 6.3.4 प्राकृतिक संसाधन भोजन के स्रोत
- 6.3.5 विनिमय संबंध
- 6.3.6 श्रम–विभाजन

6.4 शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के आर्थिक पक्ष

- 6.4.1 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वालों के जीवनयापन की रणनीतियाँ
- 6.4.2 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के औजार
- 6.4.3 भौगोलिक लचीलापन
- 6.4.4 प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार

6.5 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के सामाजिक संगठन

- 6.5.1 सरल सामाजिक पद्धति
- 6.5.2 भोजन साझा करने की विधियां

6.6 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के राजनैतिक संगठन

- 6.6.1 अत्यधिक सरल राजनैतिक संगठन
- 6.6.2 अंतर्समुदाय तथा अंतर्सांस्कृतिक संबंधों की समस्याएं

6.7 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों का सामाजिक व सांस्कृतिक गतिशीलता

6.8 सारांश

6.9 संदर्भ

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- शिकारी तथा भोजन जुटाने वाले लोगों की धारणाएं तथा इन समाजों की प्रकृति;

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित।

- शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों की विशेषताओं का वर्णन;
- शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के आर्थिक पक्षों का वर्णन;
- शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के सामाजिक व राजनैतिक संगठन का वर्णन;
- शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के सांस्कृतिक सामाजिक व सांस्कृतिक गतिशीलता का वर्णन;

6.1 प्रस्तावना

शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करना उनकी जीवन यापन शैली की एक विशेषता थी। इस इकाई में ऐसे समाजों का अध्ययन किया जायेगा जो शिकार करके और भोजन सामग्री एकत्रित करके जीवन यापन करते थे। इन समाजों को शिकार करने व भोजन एकत्रित करने संबंधी विविध गतिविधियों का भी वर्णन किया जायेगा जिनपर इनकी अर्थव्यवस्था आधारित थी। इन गतिविधियों में जीवन यापन की रणनीति तथा उस वातावरण में इस्तेमाल किये जाने वाले उपकरणों का विवरण भी शामिल है जो उन दिनों उन्हें उपलब्ध थे तथा उनको इस्तेमाल करने उनके अधिकार सुनिश्चित थे। इससे इन समाजों के सामाजिक राजनैतिक ढांचे के स्वरूप भी उजागर होगा तथा इनके सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

6.2 शिकार करना तथा भोजन एकत्रित करना

अपने अस्तित्व के आरंभ काल से लेकर अब तब मनुष्य विभिन्न प्रकार के समाजों का निर्माण करते हुए जीवन यापन करता आया है। जिन विद्वानों ने इन समाजों का गहन अध्ययन किया है, वे बताते है कि ये समाज प्रायः छः प्रकार के थे। ये सभी समाज अपनी–अपनी विशिष्ट प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल के लिए जाने जाते हैं। उनमें से एक की शैली शिकार करने और भोजन एकत्रित करने की थी। जानवरों का शिकार करना, मछलियां पकड़ना, दाने तथा बीज एकत्रित करना तथा भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पौधों का अर्क निकाल कर उसे इस्तेमाल करना आदि उनके जीवन यापन के आधार थे। इसीलिए उन्हें शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाज के रूप में जाना गया। वे प्राकृतिक संसाधनों से भोजन सामग्री प्राप्त करते थे जो उनके जीवन–यापन के प्रमुख आधार थे। नृविज्ञानी इस श्रेणी में आने वाले लोगों को शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले कहते हैं। (बेंटिंजर, 1991) ये समाज अपने निकटवर्ती प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थे। शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए साथ–साथ प्रयास करते थे। वे अपनी जिम्मेदारियां बाँट लेते थे और शिकार तथा भोजन सामग्री को बचाकर उन दिनों के लिए संग्रहित कर लेते थे, जब भविष्य में कुछ कारणों से वे शिकार न कर सकें या अन्य भोजन सामग्री इकट्ठी करके न ला सकें। इनका लक्ष्य जंगलों के जानवर, फल तथा सब्जियाँ होती थीं। इन समाजों में लिंग आधारित श्रम विभाजन की प्रवृत्ति भी मौजूद थी। पुरूष शिकार तथा भोजन सामग्री की तलाश में जंगलों में बहुत दूर तक निकल जाते थे तथा महिलाएं पौधे इकट्ठे करती थी तथा छोटे–छोटे जानवरों का

शिकार भी करती थीं तथा घर की जिम्मेदारियां सम्हालती थीं जहां बच्चों की देखभाल करना। अपने कबीले के शत्रुओं से अपने कबीलों के लोगों की रक्षा करने का दायित्व भी महिलाएं निभाती थी। विभिन्न आदिवासी समूहों की अलग–अलग पहचान थी। शिकार करने तथा भोजन सामग्री जुटाने वाले कबीलों के रूप में पहचान प्राप्त करने वाले इन समाजों की वंशानुगत विरासत तथा साझी परंपराएं थीं। अपनी संस्कृति को बनाये रखने के लिए ये लोग किसी भी सीमा तक जा सकते थे, आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए अपनी जान भी दे सकते थे।

बाक्स 6.1

पुरातात्विक खुदाई के परिणामस्वरूप हाल ही में लेजर प्रौद्योगिकी तथा संशोधित सेटेलाइट तकनीक से पता लगा है कि इन समाजों की स्त्रियां बड़े जानवरों का शिकार नहीं करती थीं, यह धारणा ठीक नहीं है। मानव कंकालों को खंगालने से पता लगा है कि स्त्रियां ही बड़े जानवरों का शिकार करती थीं। इसलिए पूर्वकालीन वैज्ञानिक मान्यताओं को आधुनिक प्रौद्योगिकियों ने संशोधन किया है।

शिकारी तथा भोजन सामग्री जुटाने वाले घूमंतू आदिवासी जानवरों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते रहते थे। वे गुफाओं में रहते थे या फिर पेड़ों की बड़ी–बड़ी टहनियों से अपने आवास स्थल बना लेते थे और समुदाय के रूप में उनमें निवास करते थे। जहाँ कहीं उन्हें लगता है कि पर्यावरण जीवन यापन के अनुकूल है, खाने–पाने की सुविधाएं उपलब्ध है, वहीं ठहर जाते थे और रहने लगते थे। वे पत्थर, लकड़ी, हड्डियां आदि से उपकरण बनाते थे। उनके उपकरण बनाने के तरीके सरल थे। ये लोग जानवरों के व्यवहार की गहन जानकारी रखते थे तथा वन उत्पत्तियों से संबंध ज्ञान रखते थे। (पप्पू, 2004) वे प्राकृतिक सत्त्व निकालकर उनके दूसरे समाजों के साथ व्यापार करते थे। कृषि आधारित समाजों के लोग तथा चरवाहे उनके उत्पादों का विनिमय करते थे और बदले में उन्हें अपने उत्पाद प्रदान करते थे।

6.3 शिकार करने तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों की विशेषताएं

उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार पर इस समाज की खास विशेषताओं का विवरण इस प्रकार है –

6.3.1 परिवार एक प्राथमिक इकाई थी

समाज का मूलभूत घटक वे लोग होते है जो परिवार के साथ मिलकर मनुष्यों का छोटा सा समूह बनाते हैं। समाज के ऐसे विभिन्न समूह आपस में संबंध स्थापित करते थे। ये समाज अपने आसपास रहने वाले अन्य समाजों की तुलना में ज्यादा सशक्त होते थे और उनके बीच प्रमुखता प्राप्त कर लेते थे। शिकार करके तथा भोजन सामग्री एकत्रित करके जीवन यापन करने वाले ये समाजिक संरचना तब तक अस्तित्व में रही जब तक कृषि आधारित समाजों का आधार था।

6.3.2 विशाल क्षेत्र

शिकार करने तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाज जहाँ रहना शुरू कर देते थे, वहीं ये दूर–दूर तक फैल जाते थे। एक स्थान पर रहने वाले लोगों से बहुत दूरी

पर दूसरे समुदाय के लोग अपनी बस्ती बसाते थे क्योंकि इनके जीवन यापन का मुख्य संसाधन प्रकृति के उत्पाद थे अथवा शिकार से प्राप्त जानवरों का मांस था। ये लोग जमीन में कुछ भी उगाते नहीं थे। जो क्षेत्र इनके कब्जे में होती थी उन्हीं क्षेत्रों के संसाधनों से ये भोजन एकत्र कर सकते थे।

6.3.3 मुखिया एक वैधानिक अधिपति

शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाज कोई औपचारिक नियमावली नहीं रखते थे जिनके पालन के लिए वे बाध्य हो परन्तु उनके बीच से समूह दवारे चुने जाने वाले मुखिया जरूर मौजूद रहते थे। ये संख्या में प्रायः दो होते थे। एक शिकार करने वाले समूह का नियंत्रण करता था, दूसरा भोजन–सामग्री एकत्रित करने वाले समूह को। (मेसेल, 2005) मुखियाओं को सामान्य जनो से अधिक अधिकार प्राप्त होते थे। यद्यपि मुखिया अपनी इच्छा से सदस्यों को आदेश नहीं देते थे हर समूह व्यावहारिक नियमों की समझ रखता था जो शिकार करने तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले सभी समूहों पर लागू होते थे।

6.3.4 प्राकृतिक संसाधन भोजन के स्रोत थे

शिकार करने तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के लोग की तमाम गतिविधियों के केंद्र में भोजन ही रहता था। क्योंकि इसी की खोज में उनके जीवन के सारे कार्य होते थे। भोजन के प्रमुख स्रोत प्राकृतिक संसाधन ही थे। इनमें से कुछ को वे भोजन के लिए एकत्रित करते थे, कुछ का शिकार करते थे। भोजन के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले उत्पादों का ये समाज उत्पादन नहीं करते थे। भारत के अलावा कुछ अन्य देशों के बारे में पता लगता है कि वहां कुछ शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले ऐसे लोग भी पाये जाते थे जो फसलें भी उगाते थे परन्तु उनको जीवन यापन के मुख्य आधार शिकार तथा इकट्ठे किये जाने वाले खाद्य–पदार्थ ही थे।

6.3.5 विनिमय संबंध

शिकार करने तथा भोजन सामग्री इकट्ठी करने वाले समाज भोजन सामग्री का संचय भी करते थे, परन्तु उसकी एक सीमा होती थी। हर शिकार करके तथा भोजन एकत्रित करके गुजारा करने वाले समुदाय की पहुंच विशेष प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों तक होती थी जिन्हें वे भोजन के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करते थे। अलग–अलग प्रकार संसाधनों से प्राप्त होने वाले उत्पादों का वे आपस में विनिमय कर लेते थे। यह विनिमय प्रणाली पारस्परिकता तथा उपहार–प्रदान या उपहार विनिमय प्रणाली के रूप में विकसित होती रही। इस प्रकार के आदान–प्रदान में मुद्रा या धन का इस्तेमाल नहीं होता था, केवल वस्तुओं का आदान–प्रदान किया जाता था।

6.3.6 श्रम–विभाजन

शिकारी तथा भोजन जुटाने वाले समाजों में लिंग आधारित श्रम–विभाजन की प्रथा थी। लेकिन अधिक आयु के लोगों से प्रायः अधिक काम नहीं लिया जाता था। विभिन्न इकाइयों के युवा पुरूष लगभग एक तरह के काम करते थे तथा युवा स्त्रियाँ दूसरी तरह के काम करते थीं। स्त्रियाँ अधिकतर भोजन बनाने के लिए पौधे इकट्ठे करती थी। वे बच्चों की देखभाल करने एवं उनके पालन पोषण के दायित्व निभाती थी।

पुरूष जंगलों में जाकर बड़े–बड़े जानवरों का शिकार करके लाते थे। परन्तु अधिक उम्र के पुरूष शिकार करने की चुनौतियों से अलग रखे जाते थे। वे प्रायः कोई काम करने के लिए बाध्य नहीं थे।

बोध प्रश्न 1

1) शिकारी तथा भोजन जुटाने वाले लोग कौन थे उनकी व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) उनके जीवन यापन का मुख्य आधार क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

3) शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाज घूमंतू नहीं थे। (सत्य / असत्य)।

4) शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों का प्रमुख दायित्व क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

5) शिकार करने वाले और भोजन एकत्रित करने वाले समाजों की छः मुख्य विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के आर्थिक पक्ष

शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले अपने जीवन यापन के लिए शिकार करने, भोजन सामग्री एकत्रित करने, मछलियां पकड़ने आदि उपाय करते थे। इसके अलावा वे जंगल के उत्पादों को भोजन में शामिल करते थे तथा उनका व्यापार भी करते थे। भोजन सामग्री के लिए वे नदियों तथा समुद्रों के उत्पादों पर भी निर्भर करते थे। यद्यपि इन संसाधनों पर उनका नियंत्रण नहीं था। उनके जीवन यापन की रणनीतियों, उनके द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले औजारों, उनका घुमक्कड़ चरित्र, उनके संपत्ति पर अधिकारों आदि का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

6.4.1 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के जीवन यापन की रणनीतियां

भोजन सामग्री जंगलों से एकत्रित करने की उनकी आदतों के कारण इन्हें शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के रूप में जाना जाता है। जीवन यापन के माध्यमों से ही इनकी पहचान जुड़ी है। शिकार करने तथा अन्न आदि एकत्रित कर गुजारा करने वाले समाजों की व्याख्या करने वाले मापदंड ही उनकी अर्थव्यवस्था के माध्यमों को भी तय करते थे। केवल उनकी अर्थव्यवस्था के स्रोतों को ही जीवन यापन के साधन मात्र नहीं माना जा सकता। इसके अलावा वे अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए वे औजार बनाते थे, हस्तशिल्प के उत्पाद तैयार करने, टोकरियां बनाने, कपड़े तथा हथियारों का निर्माण करने आदि कार्यों में भी अपने आपको व्यस्त रखते थे। इन समाजों के लोगों के क्रिया कलापों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है – (1) खाद्य–पदार्थों को एकत्रित करना, (2) खाद्य पदार्थों के स्रोतों को बदलते रहना तथा उन्हें सुरक्षित रखना (3) दिन प्रतिदिन के इस्तेमाल की अन्य चीजों का उत्पादन करना। प्राग–ऐतिहासिक काल के दौरान ये लोग यद्यपि तीन प्रकार के कार्यों में अपने आपको व्यस्त रखते थे और ये तीनों ही अर्थव्यवस्था से भी जुड़े थे, फिर भी भोजन के स्रोतों को चुनना उनके जीवन व कार्यों के प्रमुख रूप से केंद्र में था।

6.4.2 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के औजार

पूर्व ऐतिहासिक काल से ही शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के लोगों ने पत्थरों से औजार बनाना शुरू कर दिया था। वे पत्थरों की कटाई करके नुकीले और धारदार औजार और हथियार बनाना सीख गये थे। ऐसे औजारों को वे अन्य चीजों को काटने के लिए इस्तेमाल करते थे। यद्यपि शिकार करके तथा भोजन सामग्री जुटाने की विकसित प्रौद्योगिकियां आगे चलकर चलन में आ गई थीं। पाषाण तकनीक का स्थान अस्थि तकनीक ने ले लिया था। अब शिकार करने तथा भोजन सामग्री जुटाने के लिए इन समाजों के लोग धनुष और बाणों का आविष्कार कर चुके थे। मछलियाँ पकड़ने के कांटे बन गये थे, घरेलू काम में आने वाली हाथी दांत की सूइयां बनने लगी थीं। इन औजारों के आविष्कार से ऐतिहासिक परिवेश में सभ्यता के चरण बदलते चले गये। पुरापाषाण युग में जिन औजारों का इस्तेमाल होता था, वे धारदार तथा नुकीले नहीं थे। मध्यपाषाण युग में सूक्ष्म पाषाण उपकरणों का इस्तेमाल होने लगा तथा उत्तर पाषाण युग में चिकने और चमकदार उपकरण चलन में आ गये (मेसेल्स, 2005)। शिकारियों या भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के बाद जो समाज

विकसित हुए, वे धातु के बने उपकरण इस्तेमाल करने लगे। धातु के उपकरणों में भी कालानुरूप में तीन चरण सामने आये। पहले चरण की सभ्यता में तांबे के उपकरणों को आविष्कार किया और यह चरण ताम्र युग के नाम से जाना गया। इससे अगले चरण में कांसे के उपकरण तथा बर्तन आदि प्रयोग में लाये जाने लगे और यह कांस्य युग कहलाया। इसके बाद अंततः लोहे के बर्तन व उपकरण बनाने का सिलसिला शुरू हो गया और यह दौर लौह युग कहलाया।

गतिविधि 1

प्राकृतिक ऐतिहासिक संग्रहालय में जाइए तथा धरती पर उद्विकास होने वाले जीवन के प्रारूपों तथा मानव समाजों का विवरण प्राप्त कीजिए। अपने अध्ययन केंद्र पर अपने मित्रों के साथ इस विवरण पर चर्चा कीजिए तथा इस जानकारी के आधार पर एक आलेख तैयार कीजिए।

6.4.3 भौगोलिक लचीलापन

शिकार करके तथा भोजन सामग्री अर्जित करके गुजारा करने वाले समाजों के लोग घूमंतू प्रकृति के थे। वे भोजन के स्रोतों की तलाश में अपने निवास स्थान बदल लेते थे। स्थानों के परिवर्तन से यह सबूत मिलता है कि विभिन्न भौगोलिक आंचलों में भोजन की कमी हो जाती थी। वे ऊँचे स्थलों से निचले स्थलों की ओर ऋतुओं के हिसाब से भी स्थान बदला करते थे या भोजन के संसाधन कम पड़ जाने की स्थिति में भी। इस प्रकार उनके स्थान बदलने के पीछे एक खास उद्देश्य होता था और मन में चहक होती थी। यद्यपि आवश्यक संसाधनों का कम पड़ जाना और वैकल्पिक संसाधनों की तलाश में निकल पड़ने के पीछे नये संसाधनों या स्रोतों तक पहुंचना क्षतिपूर्ति का प्रयास ही कहा जायेगा। वैकल्पिक स्रोतों की तलाश उनके जीवन की प्राथमिकता थी। इसीलिए उन लोगों के सामने ऐसी स्थिति आ जाती थी कि उन्हें भोजन एक वैकल्पिक स्रोत से गुजारा करना पड़ता था। जैसे जंगल के उत्पादों कमी आ जाने पर उनके भोजन के निर्भरता जानवरों के शिकार पर अधिक आ जाती थी। इस स्थिति में भी फसलों के उत्पादों को एकत्रित करने की प्रक्रिया वे बंद नहीं करते थे। बस उसमें कमी आ जाती थी। इस स्थिति ने ही उन्हें जीवन यापन के अनेक प्रकार के संसाधन तलाशते रहने पर विवश किया।

6.4.4 प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार

शिकार करने और भोजन तलाशने वाले लोग छोटे समूहों में एक साथ रहते थे जो संसाधन या स्रोत उन्हें प्राप्त होते थे उन पर वे अपना सामूहिक अधिकार मानते थे। जंगल के जिस भूभाग पर उनका आधिपत्य था उसे केवल एक ही समूह के लोग इस्तेमाल कर सकते थे। ऐसे ही अन्य समूहों के लोग आपस में चीजों की अदला–बदली अवश्य कर लेते थे। इस प्रकार कुछ दूरी पर या निकटवर्ती क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के साथ उनके संबंध बनते चले गये। अपने–अपने क्षेत्रों में रहने वाले लोग अपने–अपने क्षेत्रों पर अधिकार समझने लगे। क्योंकि एक समूह के संसाधनों का क्षेत्र दूर–दूर तक फैला होता था। अतः कुछ समूहों के पास भोजन के विकल्प एक जैसे होते थे और कुछ के पास विकल्पों की विविधता होती थी धीरे–धीरे इसका परिणाम यह हुआ कि एक समूह मछली पकड़ने पर अधिक केंद्रित हो गया क्योंकि उसके अधिकार क्षेत्र में मछलियों के स्रोत ज्यादा थे तो दूसरे समूह के लिए

मछली पकड़ने का विकल्प तुलनात्मक रूप से कम पड़ गया, इसलिए उसने जंगली पौधों या जंगली जानवरों को भोजन के विकल्प के रूप में ज्यादा चुना। इस प्रकार एक समूह के पास एक तरह के उत्पाद अधिक हो जाते थे और दूसरे के पास दूसरी तरह के उत्पाद ज्यादा हो जाते थे। ऐसी स्थिति में वे अपने उत्पादों की परस्पर अदला–बदली कर लिया करते थे। इस प्रकार शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के लोगों के आधिपत्य में भोजन स्रोतों के बड़े–बड़े भूभाग आते गये। संसाधनों पर अधिकारों को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया बढ़ती गई क्योंकि संसाधन और उनके क्षेत्र पर्याप्त रूप से उपलब्ध थे। पहुंच के आधार पर वे उन्हें उपलब्ध होते रहते थे।

6.5 शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री जुटाने वाले लोगों के सामाजिक संगठन

सामाजिक संगठनों की संरचना नातेदारी के आधार पर तथा संसाधनों में भागीदारी के विकसित होती गई। इस प्रकार सामाजिक संगठनों के जो स्वरूप सामने आये उनका वर्णन नीचे किया गया था।

6.5.1 सरल सामाजिक

शिकार और भोजन सामग्री एकत्रित करके गुजारा करने वाले समाज प्रायः सरल सामाजिक प्रणालियों के पक्षधर थे। उनकी जीवन यापन से जुड़ी आवश्यकताएं इन्हीं से पूरी हो जाती थीं। अपनी इसी विशेषता के कारण साहलिन्स ने इन समाजों को मौलिक व समृद्ध समाज की संज्ञा दी है। किसी विशेष शिकारी व भोजन एकत्रित करने वाले समाज की विभिन्न इकाइयां उनके सगोत्री सम्बंधों के आधार पर अलग–अलग पहचानी जाती हैं। पैत्रिक आधारों पर गोत्रों को धारण करने की परंपरा रही, परन्तु कुछ समाजों में मातृपक्ष के आधार पर गोत्रों की व्याख्या की जाती थी। गोत्रों के नातेदारी संबंध इन समाजों की विशेष पहचान रही और यही प्रायः सामाजिक संगठन के आधार बनते थे और यही प्रायः सामाजिक संगठन के आधार बनते थे। शिकार करने तथा भोजन–सामग्री एकत्रित करने वाले समाज अधिकतर गोत्रों के आधार पर बने नातेदारी संबंधों पर निर्भर करते थे क्योंकि उन्हें समूह बनाकर रहना पसंद था। इन समाजों में अकेले व्यक्ति की आर्थिक लाभ के आधार पर कोई महत्व नहीं होता था। कुछ सदस्य बाण बनाने में दक्ष होते थे तो कुछ किसी अन्य कार्य में दक्ष होते थे। परन्तु सबके क्रियाकलापों से मिलने वाले लाभों पर सबका सामूहिक हक होता था। उनका प्रमुख आर्थिक स्रोत शिकार करना तथा भोजन–सामग्री एकत्रित करना था। अन्य कार्यों में लैंगिक श्रम विभाजन की नीति का पालन किया जाता था। इसके अनुसार पुरूष शिकार करने के लिए बाहर जाते थे और स्त्रियां फसलों के उत्पाद एकत्रित करती थीं। स्त्रियां विभिन्न प्रकार के कौशलों में भी निपुण होती थी जैसे कपड़ों की सिलाई करना। पूरे समूह के लिए कपड़े स्त्रियां ही तैयार करती थी। सामान्य रूप से जीवन–यापन के अन्य साधनों में स्त्री और पुरूष दोनों की भागीदारी होती थी।

6.5.2 भोजन साझा करने की विधियाँ

शिकार तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के लोगों की यह आदत थी कि वे अपने नातेदारी के जुड़े लोगों तथा मित्रों के साथ खाने–पीने की चीजों का

आदान–प्रदान करते थे। नातेदारी संबंधों के आधार पर रिश्ते–नातों का जुड़ाव होता था और इन संबंधों की डोर से बंधि इन समाजों के लोग अपने सभी कार्य प्रायः मिलजुल कर करते थे। ये संबंध जीवन यापन के आधार भी थे। खासकर उन कठिन दिनों में जब प्राकृतिक संसाधन कम पड़ जाते थे तथा शिकारियों को खाली हाथ लौटना पड़ता था। ऐसे कठिन दौर में जब किसी के जीवन यापन के लिए जरूरी भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता था या अन्य चीजों का अभाव हो जाता था तो संबंधित लोग प्रायः उसकी मदद करते थे। यदि एक समुदाय के सारे लोग ही शिकार पर नहीं जा पाते थे तो वे अन्य समूहों के लोगों से निवेदन करते थे कि उनके लिए शिकार करके लाएं और तब वे उन्हें अपने अधिकार क्षेत्रों में शिकार करने देते थे।

6.6 शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों का राजनैतिक संगठन

शिकार करने और भोजन सामग्री जुटाने वाले जटिल सामाजिक संगठन पसंद नहीं करते थे तथा अनेक प्रकार के सरल संगठनों का निर्माण करते थे जिनका विवरण इस प्रकार है।

6.6.1 अत्यधिक सरल राजनैतिक संगठन

शिकार करने तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों में एक मुखिया होता था जिसे पूरे समूह में मान्यता प्राप्त होती थी। मुखिया अपने समाज के लोगों में से ही एक व्यक्ति होता था जो आयु में सबसे बड़ा तथा आकर्षक व्यक्तित्व व प्रखर बुद्धि वाला होता था। वह अपने समाज के लोगों के आदेश जारी नहीं करता था, परन्तु वह उन्हें राजी कर लेने की कला में पारंगत होता था। मुखिया के फैसले प्रायः समान अधिकार वादी होते थे। इसीलिए किसी को ऐतराज प्रायः नहीं होता था। विवाद या झगड़े–फसाद की स्थिति में दोनों पक्षों को सुना जाता था और तब मुखिया द्वारा फैसला सुनाया जाता था। लेकिन सभी शिकार तथा भोजन जुटाने की प्रक्रिया पर निर्भर करने वाले समाजों के राजनैतिक संगठन सरल ही होते थे, यह सच नहीं था। उत्तरी पश्चिमी तट पर निवास करने वाले इन्हीं समाजों के लोग सालमन मछली पकड़ते थे। वे इन मछलियों को बाद में इस्तेमाल करने के लिए संरक्षित रखने की कला जानते थे। उनके नेता आदेश जारी करने वाले होते थे और ऐसे समाजों में बिना मुखिया या नेता के काम नहीं चलाया जा सकता था। खासकर झगड़ों की स्थिति में जटिल व सरल दोनों प्रकार के समाजों में कभी–कभी झगड़े नियंत्रण से बाहर हो जाने थे और कत्ल भी हो जाते थे। सामान्यतः यह समाज शांत रहना पसंद करते थे, परन्तु कभी–कभी इनके सदस्यों के बीच जानलेवा झगड़े हो जाते थे। ऐसा प्रायः तब होता था जब कोई मुखिया की बात मानने को तैयार नहीं होता था। परिवार के सदस्यों के बीच झगड़े बढ़ जाने से बड़े समूह टूट जाते थे और लोग छोटे–छोटे समूहों में रहने लगते थे।

गतिविधि 2

पुस्तकालय जाकर सर ई. इवान्स प्रिचार्ड की द नूअर्स किताब को पढ़िए और 'राजनैतिक संगठनों' पर दो पृष्ठ का आलेख तैयार कीजिए। इस पर अपने अध्ययन केंद्र में शैक्षिक सलाहकार तथा अपने मित्रों के साथ चर्चा कीजिए।

6.6.2 अंतर्सामुदायिक तथा अंतर्सास्कृतिक संबंधों की समस्याएं

शिकार करने तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाज अपने नातेदारी संबंधों के लिए जाने जाते थे। ये पूरा प्रयास करते थे कि उनका नातेदार उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर न जाए। यह अंतर्सामुदायिक संबंध किसी प्रतिनिधि मूलक आधिपत्य से नियंत्रित नहीं होती थी। हर समूह का अपना मुखिया होता था। जो पूरे समूह या समुदाय को नियमों में बांधकर रखता था। जो समूह के नियमों का पालन नहीं करते थे या समूह से जाने का प्रयास करते थे, उन्हें दंडित किया जाता था। इस सबके बावजूद विभिन्न समूहों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। ज्यादातर झगड़े संसाधनों को लेकर होते थे। विभिन्न समूहों के बीच जंगलों में शिकार करने या भोजन एकत्रित करने को लेकर प्रतिस्पर्धा की स्थिति बनी रहती थीं। प्रतिस्पर्धा इस बात को लेकर होती थी कि कौन बड़े से बड़े जानवरों का शिकार करेगा या फिर जंगल से बेहतर तथा बड़ी मात्रा में भोजन सामग्री कौन एकत्रित करके दिखायेगा। प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता के परिणाम के आधार पर विद्वान यह तय करते थे कि किसने बेहतर प्रयास किया। इसीलिए शिकार तथा भोजन एकत्रीकरण को लेकर अंतसमूह द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस संसाधनों को लेकर प्रतियोगिता की स्थिति उन समूहों में भी पाई जाती थी जो अन्य क्षेत्रों में निवास करते थे और नातेदारी दायरों में नहीं आते थे। यद्यपि राजनैतिक संगठनों का प्रभाव व्यापक रूप से मौजूद नहीं होता था, फिर भी झगड़े की स्थिति लम्बे समय तक खींचीं नहीं जाती कि प्रतियोगिता के कारण पैदा हुई तना–तनी के कारण उनके बीच गैर–नातेदारी स्तर पर विनिमय का सिलसिला बंद नहीं होता था।

6.7 शिकारी व भोजन एकत्रित करने वाले समाजों का सामाजिक व सांस्कृतिक गतिशीलता

शिकार करने और भोजन एकत्रित करके संतुष्ट रहने वाले समाजों के लोग बड़े शांति प्रिय थे। व्यक्तित्व स्तर पर वे आत्मनिर्भर थे, फिर भी पूरे समूह के हित को केंद्र रखना उनकी आदत थी, यहाँ तक कि निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले दूसरे समूहों के प्रति उनकी सोच नितांत सहयोगी थी। अंतर्सामूहिक तथा समूह के बाहर स्थित अन्य समूहों के साथ टकराव की स्थिति में भी वे दोषियों को कड़ी सजा देने में विश्वास नहीं रखते थे। हर आदमी को शिकार करने और जिंदा रहने के लिए भोजन सामग्री जुटाने से जुड़ी गतिविधियों को प्रोत्साहन देना वे अपना दायित्व मानते थे। (प्राइस एण्ड ब्राऊन, 1985) वे अपने बच्चों का पालन–पोषण इस प्रकार करते थे कि उनमें मुखिया का सम्मान करने के संस्कार स्वाभाविक रूप से विकसित हो। मुखिया उनके समूह का सशक्त संरक्षक एवं नियंत्रक होता था। सामाजीकरण की यह पद्धति शिकारी तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाज की जीवन पद्धति के पूरी तरह अनुरूप व अनुकूल थी।

उनके समय में ही शिकार करके और भोजन एकत्रित करके जीवन यापन करने वाले अन्य समाज भी थे जिनमें छोटे समूहों में लोग निवास करते थे। ये लोग उनकी जीवन शैली से जुड़ी गतिविधियों में उतने दक्ष नहीं थे वे इनसे अनेक चीजें सीखते थे – जैसे पत्थर तराशना, या अस्थियों पर कलात्मक कार्य करना जिन्हें सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संरक्षित रखा जाता था। इन समूहों में कुछ लोग ऐसे थे जो इस हस्तकला में दक्ष थे। लेकिन बाद के समय में सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने में

कम रूचि लिए जाने के कारण यह शिल्प प्रायः लुप्त हो गया। तस्मानिया के शिकारी तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों ने सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने के पर्याप्त प्रयास नहीं किए। इन्हें बाद में अपनी इसी संस्कृति को आष्ट्रेलिया के शिकारी व भोजन एकत्रित करने वाले कबीलों से लेना पड़ा, लेकिन धीरे–धीरे यह लुप्त प्रायः ही हो गई।

सांस्कृतिक विशेषताओं को शिकारी व भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के लोग सामाजिक अध्ययन विधि से सीखा करते थे जिसमें आयु में अपने से बड़ों तथा वयो–वृद्धों की देख–देखकर सीखना तथा अभ्यास करके जीवन में उतारना शामिल था। राजनैतिक संगठन की जो विशेषताएं उनके समय में मौजूद थीं वे सांस्कृतिक दबावों के कारण बाद के राजनैतिक ढांचों पर उनका प्रभाव देखने को मिलता है।

संस्कृति के भौतिक रूपों के प्रभाव कलात्मक जानकारियां मौजूद हैं बदली हुई पर्यावरणीय तथा वैश्विक स्थितियों भी उन प्रभावों को निरस्त नहीं कर पाई हैं, विभिन्न रूपों में वे अपनी छाप छोड़ते रहे हैं।

बोध प्रश्न 2

1) शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों के आर्थिक संसाधन क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मध्य पाषाण युग में लोग कौन से औजार/उपकरण इस्तेमाल करते थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) दीप्तिमान गतिशीलता से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

4) किसी भी समूह के लोग दूसरों के अधिकृत क्षेत्रों में शिकार कर सकते थे तथा भोजन सामग्री एकत्रित कर सकते थे। (सही/गलत)।

5) सामान्यतः शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों के राजनैतिक संगठन ..... होते थे।

6.8 सारांश

इस इकाई में हमने शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों की मौलिक विशेषताओं का वर्णन किया है। शिकार करके तथा खाने पीने की चीजें इकट्ठी करके गुजारा करने वाले समाजों की जीवन पद्धतियों की मूलभूत जानकारी इस इकाई में दी गई है। शिकार करने तथा भोजन की जुगाड़ करने वाले समाजों की मौलिक विशेषताएं तथा आर्थिक पहलू क्या थे, वे अपना जीवन चलाने के लिए क्या रणनीति अपनाते थे तथा शिकार करने के लिए तथा अपने क्षेत्रों में संसाधन जुटाने के लिए किन औजारों का इस्तेमाल करते थे। इसके बारे में विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है। इन समाजों के लोग सामाजिक तथा राजनैतिक संगठनों का निर्माण करते थे। सामाजिक संगठनों के बारे में विशद जानकारी देने के लिए उनके सामाजिक संगठन के दो महत्वपूर्ण पहलुओं की व्याख्या की गई है तथा साथ ही इन समाजों के राजनैतिक संगठन पर भी प्रकाश डाला गया है। अंत में शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों की सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता का संक्षिप्त विवरण दिया है।

6.9 संदर्भ

आर. एन. बेटिंजेर (1991). हंटर गेदरर्स : आर्चिओलॉजिकल एण्ड इवोल्यूशनरी थ्यॉरी, न्यूयार्कः प्लेनम।

एम. ए. जोशिम, (1981). स्ट्रेटलीज फॉर सखाइवलः कल्चरल निहेवियर इन एन इकोलॉजिकल कंटैक्स्ट न्यूयार्क एकेडेमिक।

आर. लेटन (1986). पॉलिटिकल एण्ड टैरिटोरियल स्ट्रक्चर्स एमोंग हंटर – गेदरर्स मेन, न्यू सीरीज 21 (1) पीपी 18–33।

एस. पप्पू (2004). डाऊन एंसियेट ट्रेल्स : हंटर–गैदरर्स इन इंडियन आर्चियोलॉजी।

ए बनार्ड (1982). हंटर गेदरर्स इन हिस्ट्री, आर्चिओलॉजी एण्ड एंथ्रोपोलॉजी (129–142) – ऑक्सफोडः बर्ग।

एम. शॉलिना बर्ग (1968). नोट्स ऑन द ऑरजिनल ए फ्लएंट सोसाइटी।

मेन द हंटर (पीपी 85–89) एलडाइन शिकागो, – बी. आर. ली एण्ड आई डी बोर (एड्स)।

एम. शैलिन्स (1972). स्टोन एज़ इकॉनोमिक्स – एलडाइनः शिकागो।

ए टैस्टार्ट (1982). द सिगनीफिकेंस ऑफ फूड स्टोरेज एमंग हंटर गेदरर्स करेंट एंथ्रोलॉजी, 23, पीपी 523–537।

सी. के. मेसेल्स (2005). द इमर्जेन्स ऑफ सिविलीजेशन : फ्रॉम इंटिंग एण्ड गेदरिंग टू एग्रीकल्चर सिटीज एंड द स्टेट इन द नीयर ईस्ट' लंदन, एन वाई रूटलेज।

टी. डी. प्राइस एण्ड जे ब्राऊन (1985). प्रीहिस्टोरिक हंटर–गेदरर्स : द इमर्जेस ऑफ कल्चरल कॉरलैक्सिटी, केलीफोर्नियाः एकेडैमिक प्रैस।

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले कबीलों को अपने जीवन–यापन की विशेषताओं से जाना जाता है।

2) शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों के जीवन यापन का प्रमुख काम जंगली जानवरों का शिकार करना तथा प्राकृतिक परिदृश्य से फसलों के उत्पाद एकत्रित करना था।

3) असत्य

4) मुखिया

5) (1) परिवार प्राथमिक इकाई

(2) व्यापक क्षेत्र

(3) मुखिया वैधानिक अधिकार होता था

(4) भोजन का स्रोत प्राकृतिक संसाधन

(5) संबंधों का आदान–प्रदान

(6) श्रम विभाजन

बोध प्रश्न 2

1) शिकार करने वाले तथा भोजन सामग्री एकत्रित करने वाले समाजों की अर्थव्यवस्था के आधार थे – औजार बनाना, हस्तशिल्प, टोकरी बनाना, कपड़े बनाना, शिकार करने तथा फसलों के उत्पाद इकट्ठे करने के औजार/उपकरण बनाना।

2) सूक्ष्म पाषाण उपकरण

3) दीप्तिमान गतिशीलता से अभिप्रायः ऊंचाई वाले स्थलों से निचले स्थलों की ओर बदलती ऋतुओं तथा संसाधनों की समाप्ति के कारण बढ़ते जाना।

4) असत्य

5) सरल

इकाई 7 पशुपालन एवं बागवानी*

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भारत में पशुचारण वितरण

- 7.2.1 पश्चिमी भारत में बंजर जमीन पर पशुचारण
- 72.2 भारत के हिमालय क्षेत्र में पशुचारण

7.3 पशुचारणों के प्रकार

- 7.3.1 घूमंतू पशुचारण
- 7.3.2 मौसमी पशुचारण

7.4 पशुपारकों की प्रमुख समस्याएं

- 7.4.1 हिमालय क्षेत्र
  - 7.4.1.1 पशुचारण पर सरकारी प्रतिक्रियाएं
  - 7.4.1.2 भूमि के स्वामित्व के अधिकार से वंचित
  - 7.4.1.3 आजीविका का संकट
  - 7.4.1.4 आसीनता
- 7.4.2 पश्चिमी क्षेत्र
  - 7.4.2.1 चरागाहों का घटते जाना
  - 7.4.2.2 पशुचिकित्सा संबंधी जानकारियों की कमी
  - 7.4.2.3 पशुओं तथा पशु–उत्पादों के व्यापार के लिए अन्य पक्षों पर निर्भरता

7.5 बागवानी के काम में लगे लोगों का परिचय

7.6 भारत के बागवानी कृषि कार्यों से जुड़े समाज

7.7 बागवानी कृषि के विभाग

- 7.7.1 मेवे की खेती
- 7.7.2 सब्जी उत्पादन
- 7.7.3 सजावटी उत्पादों की खेती

7.8 प्रौद्योगिकी आधारित बागवानी कृषि

- 7.8.1 पारंपरिक सरल बागवानी कृषि
- 7.8.2 अग्रवर्ती बागवानी कृषि

7.9 सारांश

7.10 संदर्भ

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित।

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढेंगे –

- पश्चिमी भारत में तथा हिमालय क्षेत्र में पशुचारण तथा उससे जुड़ी समस्याओं का वर्णन;
- पशुचारण के दो रूपों की व्याख्या तथा घूमंतू पशुचारण ऋतुप्रवासीय पशुचारण की तुलना;
- भारत में बागवानी समाजों का अस्तित्व;
- बागवानी के प्रकार – मेवे की खेती, सब्जियों की खेती, सजावटी खेती; तथा
- प्रौद्योगिकी आधारित बागवानी का वर्णन।

7.1 प्रस्तावना

पशुचराने वालों के नृजातीय समूह या जाति समूह होते हैं जो पशुपालन का पारंपरिक व्यवसाय करते हैं। भारत में पशुचारणों की प्रथा 2000 वर्ष पुरानी है। उत्पादन तथा आर्थिक समृद्धि के लिए पशुओं को पालने के कार्य को पशुपालन कहा जाता है। बड़ी संख्या में पशुओं को पालना आर्थिक लाभ व उत्पादन में वृद्धि करता है। कृषि कार्य में सहयोगी होने के साथ–साथ पशुपालन एक ऐसा व्यवसाय है जो कृषि पर ही आधारित भी है परन्तु इसे निम्न स्तरीय व्यवसाय माना जाता है। इससे पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ा है। इसकी राष्ट्रीय आय में बड़ा योगदान है। यह पोषक आहार एवं रोजगार के अवसर भी प्रदान करता है। पशुपालन करने वालों के लिए पशुपालन उनकी आजीविका का साधन है। यह पर्यावरण में सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम है। आर्थिक अनुकूलन का यह एक तरीका है इससे पारिस्थितिकी संतुलन में सहयोग मिलता है। सूखी और बंजर जमीन जिसमें खेती नहीं की जा सकती, उसमें चरवाहे पशु चुराते है और उनसे दूध, ऊन, बाल आदि प्राप्त करते है। वे पशुओं की देखभाल करते हैं और उनके उत्पादों से अपना काम चलाते हैं। पशुओं के मांस और त्वचा से अंतिम रूप से जो बड़ी आमदनी हो सकती है, वे उसका लालच नहीं करते। पशुपालकों की अर्थव्यवस्था और उनका जीवन–यापन जैव–विविधता पर निर्भर करती है।

7.2 भारत में पशुचारण वितरण

भारत में पशुपालकों के अनेक समूह हैं जो अनेक प्रकार के पशुओं का पालन करते हैं। इनमें कुरूबा, धांगर कर्नाटक में पाये जाते हैं। आंध्र प्रदेश में कुरूमा, गोला आदि। राजस्थान में राइका व गुज्जर, गुजरात में भरवाड, हिमाचल क्षेत्र में गुज्जर, बकरवाल तथा गद्दी आदि पश्चिमी भारत की शुष्क भूमि तथा उत्तरी भारत में हिमालय की पहाड़ियां पशुपालन के लिए जानी जाती है। इन हिस्सों में घूमंतू चरवाहे रहते हैं, वे अनेक प्रकार के पशुओं का पालन करते हैं जैसे भेड़ें, बकरियां, भैंसें, ऊंट, याक आदि।

7.2.1 पश्चिमी भारत में बंजर जमीन पर पशुचारण

चरवाहे पश्चिमी भारत के चरवाहे भूमिहीन होते हैं। वे पशुओं का पालन करते हैं तथा पशुओं की खरीद व बिक्री का व्यापार करते हैं। ये चरवाहे अरावली की पहाड़ियों में पाये जाते हैं। पश्चिमी बंजर जमीन पर प्रति वर्ष पर्याप्त रूप से वर्षा होती है, इसलिए पशुपालन का व्यवसाय आर्थिक लाभ की चीज माना जाता है।

पश्चिमी भारत में चरवाहे अन्य पड़ोसी देशों से भी आ जाते हैं जैसे पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान। वे अपनी समन्वय संस्कृति अपने साथ लाते हैं। इस प्रकार इन चरागाहों में विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं का संगम हो जाता है। विभिन्न जातियों के लोग चरवाहों के रूप में परंपरागत रूप से जीवन यापन करते हैं और इन मैदानों में एक–दूसरे से मिलते हैं। ज्यादातर चरवाहे एक ही नस्ल के पशुओं का पालन करते हैं और उन्हें पालने में वे दिव्य आनंद का अनुभव करते हैं। विभिन्न प्रकार के चरवाहों में रायका समूह के चरवाहे ऊँटों का पालन करते हैं तथा चारण पशुओं का पालन करते हैं। पशु पालन उनका वंशानुग व्यवसाय है। अतः चरवाहे अपने पशुओं का विशेष ध्यान रखते है। कुछ पशुपालक समूह अपने पालतू पशुओं को मांस के व्यापार के लिए बेचना वर्जित मानते हैं। कुछ चरवाहे ऐसे हैं जो पशुओं को बेचना भी अच्छा नहीं मानते। पशुचारण व्यवसाय में अनेक जातियों के लोग आते हैं। परम्परागत रूप से पशुपालन करते–करते कुछ पशुपालक खेती के काम भी करने लोग भी खेती के साथ–साथ पशुपालन का काम करते हैं जैसे कि जूनागढ़ के अहीर। पशुपालन उनके लिये एक अतिरिक्त आय का साधन बन जाता है। खेती के साथ–साथ पशु–पालन करने वाले किसान पारम्परिक चरवाहों से अलग होते हैं और उन्हें गैर पारम्परिक पशु–पालक कहा जाता है।

7.2.2 भारत के हिमालय क्षेत्र में पशुचारण

हिमालय की पहाड़ियों में निवास करने वाले पशुपालक घुमन्तू प्रकार के होते हैं। वे निचली भूमि से उच्च भूमि की ओर ऋतुओं के अनुसार पशु चराने का लाभ उठाते हैं। हिमालय के क्षेत्र में बड़े–बड़े चरागाह मौजूद हैं जिनमें ये अपने पशुओं को चराते हैं (भसीन, 1988)।

गर्मियों में जब अल्पाइन क्षेत्र में बर्फ पिघल जाती है तब हिमालय क्षेत्र के चरवाहे ऊँची पहाड़ियों पर चले जाते हैं और वहां अपने पशुओं को चराते हैं। बरसात के दिनों में वे निचले क्षेत्रों में लौट आते हैं तथा शीत ऋतु में जहां कहीं भी उन्हें पशु चराने के लिये चरागाह मिल जाते हैं, वहीं ये अपने पशुओं को चराते हैं। चरवाहों के लिये निचली पहाड़ियों तथा ऊँची पहाड़ियों पर चराने का सिलसिला यूं ही चलता रहता है, जहां कहीं भी ये अपने पशुओं को चराते है उन्हीं क्षेत्रों में अस्थायी रूप से बस जाते हैं। प्रवासी चरवाहों में कश्मीर के गुर्जर, उत्तरप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के चरवाहे भैंसे चराते हैं। जम्मू और कश्मीर के बकरवाल भेड़–बकरियां चराते हैं। उत्तर प्रदेश के भोटिया जाति के चरवाहें भेंड़ें चराते हैं। हिमाचल प्रदेश के गद्दी तथा कोली जाती के शेरपा याक का पालन करते हैं। गर्मी के दिनों में ये सभी चरवाहे हिमालय की ऊँची भूमि पर चले जाते हैं और सर्दियों में हिमालय के निचले हिस्सों में लौट आते हैं। हिमालय क्षेत्र में रहने वाले कुछ चरवाहे पशुपालन के साथ–साथ खेती का काम भी करते हैं। खेती करने वाले पशुपालकों के लिए पशुपालन आय का अतिरिक्त साधन है। वे इसके साथ–साथ व्यापार, हस्तशिल्प करीदाकारी आदि काम भी करते हैं।

पश्चिमी भारत तथा हिमालय की पहाड़ियां, भारत में पशु चारण के दो महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग विभिन्न प्रकार के पशुओं का पालन करते हैं। इनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

गतिविधि 1

अपने शहर गाँव की सार्वजनिक पुस्तकालय या प्राकृतिक ऐतिहासिक संग्रहालय में जाइये वहां चरवाहों के जीवन पर आधारित कोई पुस्तक पढ़िये इनमें आपको बन–गुजरों गद्दी तथा बकरवाल आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। उनके जीवन स्तर तथा जीवन की संभावनाओं पर एक निबंध लिखिये। अपने अध्ययन केंद्र में जाकर अपने साथियों के साथ इस पर चर्चा कीजिये।

7.3 पशुचारणों के प्रकार

पशुपालकों की श्रेणी में अनेक पशु पालक समूह आते हैं। इनमें से घुमन्तू पशुपालक तथा अस्थाई रूप से निवास करने वाले पशुपालक प्रमुख रूप से चर्चा में रहते हैं।

7.3.1 घुमन्तू पशुचारण

घुमन्तू पशुचारक प्रवासी समुदायों के लोग होते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर पशुओं को चराते हुए आगे बढ़ते रहते हैं और पशु चराने के लिये उपयुक्त अवसर पाकर कुछ दिन के लिये वहीं निवास भी करते हैं। ये चरवाहे घूम–घूम कर पशु चराते हैं, क्योंकि इस प्रकार पशुओं का पालन करने से उनकी आर्थिक आवश्यकतायें पूरी होती रहती हैं। यद्यपि इनके एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में तथा पशुओं के झुंडों में अनियमिततायें हो सकती हैं परन्तु वे पर्वू निर्धारित रास्तों से ही गुजरते हैं और अस्थाई रूप से निवास करने के लिये उनकी प्रवास स्थलियां प्रायः जानी पहचानी होती हैं।

पूर्व निर्धारित स्थलों पर पशुओं को चराना तथा चराते–चराते अस्थाई रूप से ठहरने के लिये पूर्व निर्धारित स्थलों को ही चुनना उनके अतीत के अनुभवों के आधार पर होता है जिनमें गोचर भूमि की उपलब्धि तथा बाजारों की उपलब्धि, बरसात तथा सीमायें आदि आवश्यकता होती हैं। मौसम में अचानक परिवर्तन आने पर जैसे अचानक भारी बरसात का होना इन चरवाहों को पशुओं को चराने के स्थलों को पशुओं को चराने के स्थलों को बदलने पर विवश करते हैं। हिमाचल प्रदेश के गुज्जर, गढ़वाल तथा उत्तराचंल के गुज्जर तथा लद्दाख के चेंगपा अपने परिवारों को भी अपने साथ रखते हैं, और उनके परिवार भी उन्हीं की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। क्योंकि वे खेती का काम नहीं करते। अतः अपनी आवश्यकताओं के लिये उन्हें अनेक प्रकार की वस्तुएं उन लोगों से खरीदनी पड़ती हैं जो खेती का काम करते हैं अथवा अन्य व्यवसायों से संबंधित हैं। चरवाहे इनसे प्रायः वस्तुओं का आदान–प्रदान करते हैं।

कुछ चरवाहे ऐसे होते हैं जो पशुपालन के साथ–साथ खेती का भी काम करते हैं। इनमें उत्तरी पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों में रहने वाले भोटिया तथा गद्दी होते हैं और सिक्किम तथा अरूणाचल प्रदेश में रहने वाले भोटिया और मोनपा होते हैं। ये लोग कुछ समय के लिये अपने पशुओं को लेकर चरागाहों में चराने के लिये निकल जाते हैं और जब इन्हें खेती का काम करना होता है तब ये अपने पशुओं को साथ लेकर नीचे

उतर आते हैं। पशुपालन और कृषि दोनों कामों की ऋतुओं के अनुसार साथ–साथ किया जाता है। घुमन्तू चरवाहे पशुपालन के साथ–साथ शिकार करने का काम भी करते हैं टोकरियां बनाते हैं तथा अन्य व्यवसायों में भी हाथ डालते हैं और लोग पशुपालन का काम नहीं करते उनके साथ सांकेतिक संबंध स्थापित करते हैं।

7.3.2 मौसमी पशुचारण

दुनिया के अनेक देशों यूरोप अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिण अमेरिका के विभिन्न देशों में इस प्रकार का पशुपालन किया जाता है। ये चरवाहे अपने पशुओं को ऋतुओं के आधार पर चराने के लिये ले जाते हैं। पशुओं को चराने के लिये ये पुरूषों को नौकरी पर रखते हैं जो अकेले अथवा अपने परिवारों के साथ पशु चराने के लिये निकल जाते हैं। कभी–कभी उनके साथ पशुओं के स्वामी भी होते हैं। कभी–कभी ये लम्बी यात्रा पर निकल जाते हैं कभी–कभी ये कुछ दिनों के लिये ही निकलते हैं। इस प्रकार के पशु पालक बहुत ऊंचाइयों पर नहीं जाते वे जमीन पर स्थाई रूप से मौजूद चरागाहों में ही अपने पशुओं को चराते हैं। जब वे अपने पशुओं के साथ आगे बढ़ रहे होते हैं तो उनके रास्ते पहले से ही तय होते हैं। गर्मियों में ये कुछ ऊंचाइयों पर चले जाते हैं ओर सर्दियों में ये निचली जमीन पर आ जाते हैं।

मौसमी पशुचरवाहे गर्मी के मौसम में विभिन्न स्थलों पर खेती करते हैं, यद्यपि उनका खेतों में फसल उगाने का कार्य बहुत सीमित होता है, मुख्य कार्य तो पशुचारण ही है। वे जानवरों के बदले जरूरत की चीजें अनाज व दालें प्राप्त कर लेते हैं। मौसमी पशु चारण दो प्रकार का होता है – ऊँची चढ़ाई वाला पशुचारण तथा क्षितिजीय पशुचारण। ऊँचाइयों पर पशुचारण पहाड़ी क्षेत्रों में होता है। इस दौरान ऊँचाइयों पशु चारण करते हुए ढलानों की ओर आते हैं। गर्मी में ऊँचाइयों पर पशु चराते हैं तथा सर्दियों में नीचे के हिस्सों में पशु चराते हैं। हिमालय की पहाड़ियों पर चरवाहे पशुओं को अपने साथ चरागाहों में ले जाते हैं। ऊँचाई पर मौसमी पशुचारण हिमालय की पहाड़ियों उनके निचले हिस्सों और घाटियों में होता है। नीति घाटी, नन्दा देवी, पश्चिम घाट तथा मध्यवर्तीय क्षेत्र अनुलम्ब पशुचारण होता है। क्षैतिज मौसमी पशुचारण ग्रीष्मकालीन चरागाहों में निवास स्थलों से दूर होता है तथा सर्दियों में शरद ऋतु के लिए निर्धारित चरागाहों में निवास स्थलों के निकट होता है। विपरीत जलवायु तथा सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों की स्थिति में पशुचारण की प्रक्रिया बाधित हो सकती है।

मौसमी पशुचारण ऊँचाइयों पर स्थित चरागाहों में लाभकारी होता है, चरवाहे खेती का काम करते हो या नहीं करते हों। जब वे एक चरवाह से दूसरे चारवाहों में अपने पशुओं के साथ जाते हैं तब वे दोनों तरह के मौसमों के लिए उपयुक्त इन्तजाम रखते हैं। हर चरवाहा और पशुओं के झुंडों के निकट ही निवास करने की योजना बनाता है। वे अपने झुंडों में पशुओं की संख्या बढ़ाते रहते हैं जिससे उन्हें आर्थिक लाभ होता रहता है।

7.4 पशुचारकों की प्रमुख समस्याएं

चरवाहों के पास संसाधनों की कमी रहती है। इसके अलावा अन्य अनेक समस्याओं से उन्हें जूझना पड़ता है जिनमें राजनैतिक व सामाजिक समस्याएं भी शामिल है। ये ऐसी समस्याएं हैं जिनसे सभी प्रकार के पशुचारक ग्रस्त हैं, अतः इनकी अलग–अलग व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। फिर भी समस्याओं को अच्छी तरह समझने के लिए

हम उन्हें अलग–अलग समझने का प्रयास करेंगे। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले पशुचारकों, हिमालय क्षेत्र तथा पश्चिमी भारत में रहने वाले पशुपालनकों की समस्याएं इस प्रकार है :–

7.4.1 हिमालय क्षेत्र

हिमालय क्षेत्र के पशुपालकों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण का लाभ भी मिलता है। अन्य क्षेत्रों में भी वे आरक्षण का लाभ उठाते हैं। परम्परागत जीवन–शैली से जुड़ी भी अनेक समस्याएं हैं। सबसे बड़ी समस्याएं सरकार की पशुपालकों से संबंधित नीतियों से जुड़ी हैं। बढ़ती जनसंख्या का दबाव और चरागाह क्षेत्रों का कम होते जाना एक गंभीर समस्या है।

7.4.1.1 पशुपालन संबंधी सरकारी प्रतिक्रियाएं

स्थायी रूप से निवास करने वालों की तुलना में पशुपालकों की जीवन–पद्धतियों को पिछड़ा हुआ तथा असभ्य माना जाता है। (सबरवाल, 1999) यह अन्तर ऐतिहासिक कालों में तैयार किए गये दस्तावेजों में दर्ज हैं क्योंकि पशुपालक न जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों को मानते थे, न कर देते थे। सांस्कृतिक रूढ़िबद्धता के कारण पशुपालक अपने मौलिक अधिकारों से भी वंचित रहे। हिमालय क्षेत्र के पशुपालक पर्यावरण के लिए खतरा माने जाने लगे हैं क्योंकि वे पशुओं की संख्या में लगातार वृद्धि करते रहते हैं और उनके पशु उन वनस्पतियों को भी चर जाते हैं जिनका संरक्षण जरूरी है। इन कारणों से कुछ क्षेत्रों से पशुचारकों को हटाया भी जा चुका है।

7.4.1.2 भूमि के स्वामित्व के अधिकार से वंचित

पशुचारक चरागाहों को अपनी सम्पत्तिर मानते हैं, क्योंकि परंपरागत रूप से वे सदा से ही इन चरागाहों में अपने मवेशियों को चराते आये हैं। (चक्रवर्ती, 1998) चरागाहों के वितरण के बारे में उनकी परम्पराएं तथा अन्य मान्यताएं उन्हें चरागाहों की व्यवस्था करते तथा संसाधनों बंटवारा या वितरण करने में मदद करते हैं। इसलिए वे चरागाहों पर अपना पारम्परिक अधिकार मानते हैं। परन्तु इस विरासत का कोई लेखा–जोखा उपलब्ध नहीं है। इसलिए सरकारी कागजों में इनका उल्लेख नहीं है। इसलिए भूमि–संसाधनों पर उनके अधिकार सुनिश्चित नहीं किया जा पाते। हिमाचल प्रदेश में भूमिहीनों को जमीन दिये जाने की योजना का लाभ भी इन पशुचारकों को इसी कारण नहीं मिल पाया।

7.4.1.3 आजीविका का संकट

पशुचारकों को दो तरह से आजीविका के संकट का सामना करना पड़ता है। एक है चरागाहों का कम होते जाना/चरागाहों पर चरवाहों का वैधानिक अधिकार न होने से तथा उनके संरक्षण की नीतियां स्पष्ट न होने के कारण चरागाह दिन प्रतिदिन घटते ही जा रहे हैं।

जनसंख्या का बढ़ता – चरवाहों की संख्या में वृद्धि हो जाने से हिमालय की तलहटी में सर्दी के मौसम में होने वाले पशुचारण में कठिनाइयां उत्पन्न हो रही हैं। चरागाहों में कमी आने का एक कारण है इन क्षेत्रों में सड़कों का बनना तथा खेती के लिये जमीन तैयार किया जाना, जंगलों का कटना तथा सुरक्षा बलों के लिये जमीनों का

आबंटन। गर्मी के दिनों में हिमालय की ऊँचाइयों पर स्थित चरागाहों से संबंधित समस्यायें भी उत्पन्न होने लगी हैं। हिमालय – क्षेत्र में लद्दाख चेंगथंग सिक्किम में लेचंग, अरूणाचल प्रदेश में तवांग पशुचारकों के लिए संकट उत्पन्न करने लगे हैं। प्रवासी मार्गों तक अवरूद्ध हो जाना भी चरवाहों के लिए बहुत बड़ा संकट उत्पन्न कर रहा है। हिमालय क्षेत्र के राज्यों में पर्यटन में भारी कमी आई है। विद्युत उत्पादन केंद्रों का निर्माण तथा अनेक विकासपरक निर्माण भी समस्याएं खड़ी कर रहे हैं। परिणामतः चरवाहों को अपने पशुओं के साथ ग्रीष्मकाल से शरद ऋतु तक तथा शरद ऋतु से पुनः ग्रीष्मकाल तक पशु चराने के मार्ग बदलने पड़ते हैं नये रास्तों से मवेशियों के ले आये जाते के कारण अनेक मवेशी गायब हो जाते हैं, अनेक दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते हैं। पशुओं की चोरी भी हो जाती है।

7.4.1.4 आसीनता

पशुपालकों के असुरक्षित प्रवासन के कारण हिमालय प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में अनेक पशुपालक समूह घर बनाकर किसी एक स्थान पर बस गये हैं। हिमालय क्षेत्र के इन इलाकों पशुपालकों का पशु चराने के लिए निकलता खतरों से भरा है। इसके अलावा कुछ सरकारी नीतियां भी पशुपालकों के अनुकूल नहीं हैं। इन नीतियां के चलते पशुपालन में कठिनाइयां सामने आ रहीं हैं। चरवाहों की संस्कृति को भी बहुत खतरा है और पशुचारण व पशुपालन के अस्तित्व पर संकट मंडरा रहा है। पशुपालकों के लिए जमीनों पर मालिकाना हक दिये जाने के वैधानिक आधार उपलब्ध न होने से उन्हें पशु चराने के लिए अपनी जगह मिलना भी संभव नहीं है और सार्वजनिक क्षेत्र लगातार सिकुड़ते जा रहे हैं।

कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में टिक नहीं पा रहा है और उसके स्थान पर खेती या बागवानी आर्थिक आधार बनते जा रहे हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण है शीतकालीन चरागाहों का प्रतिबंधित किया जाना। ऐसे में हिमालय क्षेत्र के पशुपालकों को कृषिकारी में लगना या बागवानी करना ही आर्थिक विकल्प दिखता है। ऐसा करके वे अपने मवेशियों को बचा सकते है तथा आगामी पीढ़ियों के लिए व्यावसायिक जमीन तैयार कर सकते हैं।

7.4.2 पश्चिमी क्षेत्र

हिमालय क्षेत्र के पशुपालकों की तरह ही पश्चिमी क्षेत्र के पशुपालक भी अनेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। इनका विवरण इस प्रकार है –

7.4.2.1 चरागाहों का घटते जाना

पश्चिमी भारत के क्षेत्रों में भी पशु चराने के स्थल कम होते जा रहे हैं। चरागाहों के कम होने के पीछे अनेक कारण हैं। जंगलों पर बढ़ते दबाव, सिंचाई आधारित खेती का विस्तार, ग्रामीण संस्थानों का पृथक्करण तथा चरागाहों का कम होते जाना। जंगलों के चारों ओर अब आबादी का दवाब बढ़ गया है जैसे अरावली की पहाड़ियों भेड़ों, ऊँटों तथा अन्य पशुओं के चराये जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। कृषि योग्य भूमि में सिंचाई की सुविधायें बढ़ जाने के कारण खेती का काम उन जमीनों पर भी होने लगा है जहां पहले पशु चराये जाते थे। राजस्थान में पशुओं को चराये जाते थे। राजस्थान में पशुओं को चराये जाने वाली बंजर जमीन पर भी अब सिंचाई सुविधाओं के कारण खेती होने लगी है और हर खेत में कई–कई फसलें ली जाती हैं, इससे पशु चराने

की जमीन बहुत कम हो गई। ग्रामीण संस्थानों में ग्रामीण संस्थानों जैसे, ग्राम पंचायतों को अब ये अधिकार दे दिये गये हैं कि वे मुक्त जमीन को सब के लिये खोल दें। इससे पशु चराने के लिये छोड़ी गई जमीनों पर अब ग्रामीणों ने कब्जे कर लिये हैं। जैसलमेर, बाड़मेर तथा बीकानेर और बानी के चरागाह राजस्थान में लगभग लुप्त हो चुके हैं।

7.4.2.2 पशुचिकित्सा संबंधी जानकारियों की कमी

आधुनिक युग में यद्यपि पशुचिकित्सकों और दवाईयों का अभाव नहीं है, बीते समय में पशुओं के बीमार हो जाने से प्रायः उनकी मृत्यु हो जाती थी परन्तु पशु पालकों में पशुओं की चिकित्सा के प्रति जागरूकता का अभाव पशुओं की चिकित्सा में बाधक बन जाता है। पशुपालक अपने पशुओं को टीके नहीं लगवाते। इसके स्थान पर वे पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों का इस्तेमाल करते हैं। पशुपालक आधुनिक दवाओं का इस्तेमाल भी पशुओं के इलाज के लिए करते हैं परन्तु क्योंकि वे पशु चिकित्सकों से सलाह लिये बिना स्वयं ही दवाओं की दुकानों से दवाएं खरीदकर बीमार पशुओं को खिला देते हैं। कितनी दवा दी जानी चाहिए इसकी ठीक जानकारी न होने के कारण वे पशु को जल्दी ठीक करने के जुनून में दवाओं की ज्यादा मात्रा खिला देते हैं। इसके अलावा बाजार में आजकल नकली दवाएं भी मिलने लगी है। पशुपालक नकली–असली का अंतर नहीं जानते और गलत दवायें खरीद कर खिला देते हैं जिससे समस्या और बढ जाती है।

7.4.2.3 पशु और पशु उत्पादों के व्यापार के लिए अन्य पक्षों पर निर्भरता

पशुपालन जानवरों का व्यापार सीधे–सीधे स्वयं नहीं कर पाते। पशुओं को बेचने के लिए तथा पशुओं के उत्पादों को बेचने के लिए उन्हें किसी का सहारा लेना पड़ता है। इससे उनके मुनाफे में कटौती हो जाती है। जिन लोगों का पशुपालक सहयोग लेते हैं, वे प्रायः पशुपालक समाज के लोग नहीं होते। ऐसी स्थिति में उन्हें पशुओं के व्यापार में तथा पशुओं के उत्पादों के व्यापार में समुचित लाभ नहीं मिल पाता और पशुपालक स्वयं को उपेक्षित मानने लगते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) पशुपालन की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पशु चराने के लिए भारत में इस्तेमाल होने वाले दो प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) घूमंतु पशुचारक कौन हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) आजीविका का संकट पश्चिमी क्षेत्र के पशुचालकों की सबसे बड़ी समस्या है? सत्य (✓) /असत्य (✕)

7.5 बागवानी के काम में लगे लोगों का परिचय

बागवानी खेती का एक प्रकार है जिनमें लोग वनस्पतियों व वृक्षों की खेती करते हैं जो सजावट, भोजन, दवाएं आदि के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। यह एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें बाग लगाए जाते हैं, इसीलिए इसे बागवानी कहा जाता है। बागवानी का व्यवसाय 18वीं शताब्दी में आरंभ हुआ था यद्यपि बाग लगाने की प्रथा बहुत पुरानी है। पशुपालकों से भिन्न, वे समाज जो पशुओं को पालते हैं, वे पेड़–पौधों के रोपड़ में विश्वास रखते हैं जिससे उन्हें अतिरिक्त आय हो सके और वे अपना जीवन यापन सुविधापूर्वक कर सकें।

बागवानी समाजों के लोग कृषि–समाजों से अलग होते हैं। वे खेती में हल नहीं चलाते। वे बागवानी के लिए बड़ी–बड़ी मशीनों तथा जटिल उपकरणों की जरूरत नहीं पड़ती। खेती करने वाले किसान पौधे उगाते हैं जो अनाज तथा दालों के रूप में उनके भोजन के संसाधन बनते हैं। कुछ लोग मुर्गीपालन का व्यवसाय करते हैं जिससे उन्हें आर्थिक लाभ हो सके। वे अपने द्वारा पैदा किये गये अनाजों को बेचकर वे चीजें खरीद लेते हैं जिन्हें खेतों में पैदा नहीं कर सकते। इसी प्रकार बागवानी के उत्पादों के बाजार में बेचकर अपनी आवश्यकता की चीजें खरीदी जाती हैं। बागवानी करने वाले समुदाय कभी–कभी शिकार भी करते हैं। वे मौसमी पेड़–पौधे उगाकर अपनी पौष्टिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। बागवानी के व्यवसाय में लगे लोगों के सामने व्यापार की व्यापक संभावनाएं खुली होती हैं। उनके समुदाय पशुपालकों के समुदायों की तुलना में बड़े होते हैं।

7.6 भारत के बागवानी कृषि कार्यों से जुड़े समाज

भारत में शिकार करने और भोजन इकट्ठा करने वाले समाजों के बाद बागवानी कृषि समाजों का उदय हुआ। अतीतकाल में बागवानी कृषि से जुड़े लोग तीन प्रकार के उत्पादन किया करते थे – फल और सब्जियां उगाना तथा सजाने वाले उत्पादों जैसे फूलों की खेती करना। भारत में विलियम केरी ने 19वीं शताब्दी में बागवानी कृषि की स्थापना की थी, परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने से पहले मुगल शासक बागवानी कृषि

करवाते थे। विलियम केरी ने भारत में बागवानी कृषि को बढ़ावा दिया जिससे बाजार में बागवानी कृषि के विभिन्न प्रकार के उत्पाद शामिल किये जा सकें। भारत में बागवानी कृषि के चलन से पहले बाजारों में बागवानी कृषि के उत्पादों की कमी थी, तथा इनके व्युत्पन्न बाजारों में ही मुश्किल से मिलते थे। बागवानी कृषि का आरंभ होने के बाद यह उत्पाद बाजारों में आसानी से मिलने लगे।

धीरे–धीरे भारत में बागवानी कृषि का व्यवसाय बहुत बढ़ गया और इसके उत्पादों से होने वाली आमदनी के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने लगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में बागवानी कृषि का व्यवसाय बहुत विकसित स्थिति में आ गया था। बागवानी कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसकी विविधताओं और क्षमताओं में वृद्धि की अनन्त संभावनाएं हैं। बागवानी कृषि के उत्पाद फल, सब्जियां, मशरूम आदि मौसमी रूप से उपलब्ध होते हैं। इनके बाजार भाव बढ़ने की खुली संभावनाएं होती है। बागवानी कृषि के उत्पादों के उपभोक्ता अधिकतर शहरों के लोग होते हैं जो गांवों में रहने वाले कृषि उत्पादों से जुड़े लोगों की तुलना में फलों तथा सब्जियों की अधिक खरीदारी करते हैं। बागवानी कृषि की जड़ें खेती में होती हैं और ऐसे पौधों के उगाने से आरंभ होती हैं जिनके उत्पाद खाने के काम आते हैं। यद्यपि बागवानी कृषि में लगे लोग ऐसे पौधे ही उगाते हैं जिनके उत्पाद कलात्मक कार्यों, सजावट अथवा दवाओं के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं।

गतिविधि 2

इंटरनेट पर पिछले 10 वर्षों के दौरान भारत सरकार द्वारा बागवानी कृषि को बढ़ावा देने वाली जानकारियों व योजनाओं का पता लगाइए तथा विभिन्न प्रकार के पौधों/सब्जियों/शहद आदि के उत्पादन हेतु सरकार द्वारा जारी की गई धन राशियों का बागवानी कृषि में लगे लोगों से किस प्रकार उपयोग किया, इसकी जानकारी प्राप्त कीजिए। इस खोजबीन के बाद एक पृष्ठ का एक आलेख तैयार करिए। इस आलेख पर अपने अध्ययन केंद्र पर जाकर अपने साथियों के साथ चर्चा कीजिए।

7.7 बागवानी–कृषि के विभाग

बागवानी कृषि के व्यवसाय में कार्यरत लोग विभिन्न प्रकार के कार्यों को अपने हाथ में लेते हैं। परन्तु जो अपने उपभोक्ताओं की संतुष्टि को केंद्र में रखकर बागवानी कृषि करते हैं वे विभिन्न प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करते हैं तथा उत्पादन की वैज्ञानिक विधियां अपनाते हैं। बागवानी कृषि के उत्पादों को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1) मेवे की खेती,

2) सब्जी उत्पादन,

3) सजावटी उत्पाद

यह विभाजन बागवानी कृषि के फसलों पर आधारित है तथा यह बागवानी कृषि के उत्पादों के इस्तेमाल पर भी आधारित है। सच तो यह है कि बागवानी कृषि के उत्पादों को अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

7.7.1 मेवे की खेती

मेवे की खेती में फलों तथा फलियों की फसलें उगाना तथा उनका व्यापार करना शामिल है। बागवानी कृषि में फलों में पेड़ों पर उगने वाले फल तथा झाड़ियों तथा बेलों पर आने वाले फल शामिल है। पेड़ों पर आने वाले फल प्रायः आकार में बड़े होते हैं परन्तु झाड़ियों पर आने वाले फल छोटे आकार के होते हैं। दोनों प्रकार के फल सदाबहार पौधों से प्राप्त किये जाते हैं परन्तु बागवानी कृषि में पारंगत लोग फलों को दो हिस्सों में विभाजित करते हैं सच्चे फल और मिथ्या फल। सच्चे फलों को सरल फल भी कहा जाता है। ये वे फल होते है जो एक अंडाशय वाले ऊतकों से बनते हैं। सच्चे फलों के उदाहरण हैं – आड़ू, संतरे, बेर आदि। मिथ्या फलों में – रसभरी, सेब और नाशपाती आदि आते हैं। मिथ्या फल ऊतकों और अंडाशय से बनते हैं।

7.7.2 सब्जी उत्पादन

सब्जी उत्पादन में इस्तेमाल होने वाली सब्जियां शामिल होती हैं। इस व्यवसाय में टमाटर, फलियां, मकई आदि उगाये जाते हैं जिनका व्यापार होता है। सब्जी उत्पादन में प्रायः दो तरह के उत्पाद शामिल होते हैं दोनों ही शाकीय श्रणी में आते हैं। फिर भी दोनों में उपयोगिता के आधार पर अंतर होता है। पहली श्रेणी में वे फसलें आती हैं जिन्हें पकाने से पहले नहीं खाया जा सकता है और दूसरी श्रेणी में वे सब्जियां आती है जिन्हें बिनाय पकाये भी खाया जा सकता है (जैसे – सलाद में उपयोग की जाने वाली सब्जियां) छोटे स्तर पर उगाये जाने वाली सब्जियां व्यावसायिक स्तर पर पर उपयोगी नहीं होती। व्यापार करने के लिए सब्जियों को बड़े–बड़े खेतों/भूखंडों में उगाया जाता है।

7.7.3 सजावटी उत्पादों की खेती

बागवानी कृषि में ऐस उत्पाद भी उगाये जाते हैं जो कलात्मक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल होते हैं। इस तरह की बागवानी कृषि में हरे पौधे उगाये जाते हैं, इसीलिए इसे हरित उद्योग भी कहा जाता है। सजावटी की श्रेणी में आने वाला पौधा अपने सौंदर्य दर्शन के गुणों के कारण सौंदर्यकरण के लिए इस्तेमाल किया जाता है यद्यपि हर पौधे में सौंदर्यकरण का गुण होता है परन्तु सभी को सौंदर्यकरण के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता। जैसे सेब अथवा आम के पेड़ों को सजावटी उपयोग में नहीं लाया जाता। उनके सौंदर्यकरण की विशेषता को अन्य रूप में इस्तेमाल किया जाता है। सजावटी बागवानी कृषि के दो रूप होते हैं – एक है फूलों की खेती – इसमें गमलों में लगाए जाने वाले पौधे तथा फूल शामिल होते हैं। दूसरा है जमीन में उगाए जाने वाले बागवानी कृषि के उत्पाद। ये घर के बाहरी क्षेत्रों में सजावट के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। उदाहरण के लिए परिदृश्यीय सजावटी वनस्पतियों में ओक के पेड़, मधुचूस, चिनार का पेड़ आदि।

7.8 प्रौद्योगिकी आधारित बागवानी कृषि

बागवानी कृषि के व्यवसाय में लगे लोग अनेक उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं। उपकरणों के इस्तेमाल के आधार पर बागवानी कृषि को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – सरल बागवानी कृषि तथा विकसित या अग्रवर्ती बागवानी कृषि।

7.8.1 पारंपरिक सरल बागवानी कृषि

सरल बागवानी कृषि विभिन्न परम्परागत प्रौद्योगिक ढंगों से की जाती है जिन्हें यांत्रिक, जैविक, रासायनिक तथा प्रबंधन कहा जा सकता है। इनमें यांत्रिक विधि से जाने वाली बागवानी कृषि का पारंपरिक ढंग की बागवानी कृषि में विशेष महत्व है। सरल बागवानी कृषि से जुड़े लोग उन उपकरणों का इस्तेमाल भी करते हैं जो पुरा–पाषण युग के दौरान इस्तेमाल किये जाते थे – जैसे पत्थरों की बनी कुल्हाड़ियां जिनका इस्तेमाल जंगलों से लकड़ियां काटने के लिए किया जाता था। फावड़े तथा नुकीली छड़ियां जिन्हें मक्का, गन्ना तथा अन्य बागवानी कृषि से जुड़ी फसलों को बौने के लिए मिट्टी खोदने हेतु किया जाता था। धीरे–धीरे जब उन्होंने पशुपालन अपना लिया तब बागवानी कृषि में हल जोतने का चलन शुरू हो गया। यहीं से कृषि का विस्तार होना शुरू हो गया और कम लागत की खेती होने लगी। इसी दौरान भूमि के मालिकों ने खेती में काम करने के लिए लोगों की जरूरत महसूस की और जमीनदार तथा श्रमिक वर्ग बनते गये। बागवानी कृषि में काम आने वाले जितने भी यंत्र या उपकरण हें, उनमें हल का आविष्कार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। हल के आविष्कार ने सामाजिक जीवन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए। यांत्रिक माध्यमों में आये नये बदलावों ने पहले से ही मौजूद बागवानी कृषि प्रौद्योगिकी को नई धार दे दी। समय के साथ–साथ बागवानी कृषि में लगे लोग नये–नये उपकरणों का प्रयोग करते रहे और पीढ़ी दर पीढ़ी विकास मूलक परिवर्तन होते रहे और बागवानी कृषि प्रौद्योगिकी में सुधार होता गया और उसका परिणाम है विकसित या अग्रवर्ती बागवानी कृषि।

7.8.2 अग्रवर्ती बागवानी कृषि

अग्रवर्ती बागवानी कृषि में कृषि उत्पादों के लिए जटिल माध्यमों का इस्तेमाल किया जाता है और अनेक प्रकार की फसलें उगाइ जाती हैं। फसलों के उत्पादन की जटिलता में बीजों का उत्पादन, कीट नियंत्रण, अच्छी गुणवत्ता वाले उर्वरक जमीन तैयार करने के आधुनिक तरीके ट्रैक्टरों का इस्तेमाल आदि शामिल हैं। ये आधुनिक प्रौद्योगिक नवीकरण बागवानी कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इनका प्रयोग करने से धन, समय और ऊर्जा की बचत होती है। यांत्रिक ऊर्जा के इस्तेमाल से फसलों के लिये जल्दी और सरल ढंग से जमीन तैयार की जा सकती है। विकसित यंत्रों की जानकारी, उनके इस्तेमाल बागवानी कृषि के उत्पादों का रखरखाव, बाजारों की उपलब्धता की जानकारी से बागवानी कृषि के व्यवसाय को गति मिलती है और संशोधित उत्पादों से अधिक लाभ कमाया जा सकता है। उद्योग के रूप में बागवानी कृषि की मांग बढ़ती जा रही है क्योंकि बाजार में बागवानी कृषि की मांग बढ़ रही है। इससे बागवानी कृषि करने वाले लोगों में नये–नये उपकरणों का इस्तेमाल करने के प्रति जागरूकता बढ़ी है, खासकर ऐसे उपकरण एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से ले जाया जा सकता है और सरलतापूर्वक इस्तेमाल किये जा सकते हैं। ऐसे प्रौद्योगिक विकास में अनेक नये–नये उपकरण शामिल हैं जैसे – उद्यान की घास काटने की मशीन, मक्का, गेहूँ, धान तथा गन्ना काटने की मशीनें तथा अन्य कृषि उपयोगी यंत्रों का इस्तेमाल/सजावटी बागवानी कृषि के लिए इस्तेमाल होने वाले कुछ नये उपकरण भी चलन में आये हैं जिन्हें हाथ से भी चलाया जा सकता है और बिजली से भी।

बोध प्रश्न 2

1) बागवानी कृषि तथा बागवानी कृषिकारों की अपने शब्दों में व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में बागवानी कृषि की स्थापना किसने की थी?

.....

.....

.....

.....

3) भारत में लोकप्रिय बागवानी कृषि के तीन रूप कौन–कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

4) परम्परागत बागवानी कृषि में आधुनिक प्रौद्योगिक माध्यमों का इस्तेमाल होता है। सही उत्तर का चुनाव कीजिए। सही (✓) / गलत (✕)

7.9 सारांश

पशुपालक और बागवानी कृषि कार्य में लगे लोग भारत की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। पशुपालन में जानवरों को पाला जाता है। बागवानी कृषि में विभिन्न प्रकार के पौधें उगाये जाते हैं। इस इकाई को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में पशुपालन तथा पशुपालन व्यवसाय का वर्णन किया गया है। इसमें भारत में पशुपालक समुदायों का वर्णन किया गया है। इसमें भारत के दो प्रमुख पशुचारण क्षेत्रों के बारे में बताया गया है। एक हिमालय क्षेत्र में हैं, दूसरा भारत के पश्चिमी भाग में। विभिन्न संस्थानों के माध्यम से सकरारी हस्तक्षेप के कारण पशुपालकों को पशुओं के रखरखाव तथा ग्रीष्म और शरद ऋतुओं में पशुचारण के मामले में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इस इकाई में भारत के दोनों पशुचारण क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के दूसरे भाग में बागवानी कृषि के बारे में बताया गया है। भारत तथा विश्व की खाद्यान्न प्रणाली में बागवानी कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। इस इकाई में भारत के बागवानी कृषि से जुड़े समाजों का संक्षेप से वर्णन किया गया है। बागवानी कृषि के उत्पादों के इस्तेमाल के आधार पर बागवानी कृषि को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है। इस इकाई में कृषि प्रौद्योगिकी के विभिन्न रूपों तथा उपकरणों के आधार पर बागवानी कृषि को दो भागों में विभाजित किया गया है।

7.10 संदर्भ

वी. भसीन (1988). *हिमालयन इकॉलॉजी : ट्रॉशूमेन्स एण्ड सोशल ऑर्गनाइजेशन ऑफ गद्दीज इन हिमाचल प्रदेश,* नई दिल्लीः कमल राज।

एल. वी. ब्राउन (2002). *एप्लाई प्रिसिपल्स ऑफ हॉटीकल्चर* (सैकिण्ड एडीशन) बटर वर्थ – हीन मान।

के. एम चक्रवर्ती (1998). *ट्रॉशूमेन्स एण्ड कस्टमरी पैस्टोरल राइट्स इन हिमाचल प्रदेशः क्लेनिंग द हाइ पॉरचर्स माउन्टेन रिसर्च एण्ड डिवैलपमेन्ट,* 18 (1, 5–15)।

एस.पी. घोष (1999). *रिसर्च प्रीपेयर्ड नैस फॉर एस. सीलेरेटेड ग्रोथ ऑफ हॉर्टिकल्चर इन इण्डिया। जरनल ऑफ एप्लाइड हॉर्टीकल्चर,* 1 (1), 64–69।

जे. जैनिक (2003). *हिस्ट्री ऑफ हार्टीकल्चर* – टिपर केनो प्रेस।

पी.एस. कबूरी (1999). *पैस्टोरेलिज्म इन एक्सपैन्शन : द ट्रांशमिंग हर्डर्स ऑफ वैस्टर्न राजस्थान,* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

बी. के. सबरवाल (1999). *पैस्टोरल पॉलिटिक्स : शैफर्ड्स, ब्यूरोक्रेट्स एण्ड कन्जर्वेशन इन द वेस्टर्न हिमालय,* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी।

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) पशुपालन वह प्रणाली है जिसमें बड़े स्तर पर पशुओं का पालन किया जाता है।
2) पश्चिमी भारत और भारतीय हिमालय क्षेत्र की बंजर भूमियां।
3) घूमंतू पशुपालक वे प्रवासी समुदाय है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए पशु चराते है और अस्थायी रूप से उन्हीं स्थलों पर निवास करते हैं। उनका अस्थायी निवास पारिस्थितिकी के आधार पर तय किया जाता है, जैसे – स्थल पर पशुचराने के लिए हरी–घास की पर्याप्त उपलब्धता।
4) गलत

बोध प्रश्न 2

1) बागवानी कृषि में ऐसे पौधे उगाये जाते हैं जो खाने के काम आते हैं, और सजावट, दवाओं आदि के रूप में इस्तेमाल होते हैं। बागवानी कृषि का काम करने वालों को बागवानी कृषि कर्मी या बागवान कहा जाता है।
2) भारत में बागवानी या बागवानी कृषि की स्थापना विलियम केरी ने की थी।
3) i) मेवे की खेती

ii) सब्जियां उगाना

iii) सजावटी उत्पादों की खेती

4) गलत

इकाई 8 घरेलू उत्पादन प्रणाली*

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 उत्पादन की प्रणालियाँ

- 8.2.1 एशियाई उत्पादन प्रणाली
- 8.2.2 प्राचीन उत्पादन प्रणाली
- 8.2.3 सामंती उत्पादन प्रणाली
- 8.2.4 पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली

8.3 घरेलू उत्पादन प्रणाली

8.4 उत्पादन–शक्तियां

8.5 उत्पादन के संबंध

8.6 घरेलू उत्पादन प्रणाली की आलोचनाएं तथा प्रतिक्रिया

- 8.6.1 घरेलू उत्पादन प्रणाली का अस्तित्व कभी था ही नहीं,
- 8.6.2 शक्तियां, सम्बंध तथा उत्पादन के संसाधन पितृ–प्रधान परिवारों में खत्म होते जा रहे थे।
- 8.6.3 वंशानुक्रम से घरेलू उत्पादन प्रणाली तक आए परिवर्तनों में पहचान कठिनाई।
- 8.6.4 पुरूष कभी भी उत्पादन के उत्तराधिकारी नहीं बन पाए।

8.7 घरेलू उत्पादन प्रणाली में राजनीति

8.8 सारांश

8.9 संदर्भ स्रोत

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- उत्पादन प्रणालियों का वर्णन तथा इसके विभिन्न प्रकारों की व्याख्या।
- उत्पादन की घरेलू प्रणाली तथा उसके बुनियादी बातों का अध्ययन।
- उत्पादन की विभिन्न शक्तियां तथा उनके उत्पादन से संबंध।
- घरेलू उत्पादन प्रणाली की मार्क्सवादियों द्वारा आलोचना और प्रतिक्रियाएं।
- घरेलू उत्पादन प्रणाली पर होने वाली राजनीति की समझ।

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित।

8.1 प्रस्तावना

इससे पहले वाली इकाई 7 में आपने पशुपालकों तथा बागवानी–कृषिकारों के जीवनयापन एवं उनकी प्रभावों के बारे में पढ़ा। इस इकाई में हम घरेलू उत्पादन प्रणाली का वर्णन करेंगे। समाज उद्विकास प्रक्रिया में विविध बदलावों का साक्षी है जिन्हें निर्वाह की एक प्रणाली से चलकर दूसरी प्रणाली तक पहुँचने के विवरणों से समझा जा सकता है। इनमें घरेलू उत्पादन प्रणाली का अपना महत्व है। इस इकाई में उत्पादन प्रणाली के मूल धारणा पर प्रकाश डाला जायेगा। साथ ही इसके विविध प्रकारों की चर्चा की जायेगी। सामान्य उत्पादन प्रणाली से लेकर घरेलू उत्पादन प्रणाली तक सभी प्रकार की उत्पादन प्रणालियों पर इस इकाई में प्रकाश डाला जायेगा। घरेलू उत्पादन के विभिन्न पक्ष, जैसे – सामाजिक सम्बंध, शक्तियां एवं उत्पादन के माध्यम तथा उत्पादन के संबंध। इसमें घरेलू उत्पादन प्रणाली के कुछ आलोचकों के विचार भी प्रस्तुत किये जायेंगे जिन्हें घरेलू उत्पादन प्रणाली ने झेला है और हर आलोचना का जवाब भी दिया है। घरेलू उत्पादन प्रणाली के राजनैतिक पहलुओं पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला जायेगा।

8.2 उत्पादन की प्रणालियां

उत्पादन प्रणाली आर्थिक समाजशास्त्र का एक प्रमुख विचार है। इसमें मानव श्रम को मानव समाजों में लम्बे समय से विद्यमान रही विभिन्न प्रौद्योगिकियों के माध्यम से ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है। उत्पादन प्रणालियों में विभिन्न प्रौद्योगिकियां शामिल हैं, जैसे – उपकरण, कौशल, जानकारी, श्रम शक्ति आदि। कार्ल मार्क्स यह मानते थे कि मानव समाजों की विभिन्न अवस्थाओं को जो कुछ वे उत्पादन करते हैं, उससे नहीं तय किया जा सकता। परन्तु वे जिन माध्यमों तथा शक्तियों से उत्पादन करते हैं, उनसे तय किया जाना चाहिए। (रोजेनविग, 2012) इससे यह पता लगता है कि समाज के विकास के विभिन्न स्तरों का निर्णायक घटक यह है कि उस समाज के लोग विकास उत्पादन प्रणाली का इस्तेमाल करते हैं तथा भौतिक वस्तुओं के उनके उत्पादन के उत्पादन के साधन क्या हैं। किसी भी समाज में एक उत्पादन प्रणाली का इस्तेमाल नहीं होता। एक साथ दो या उससे अधिक उत्पादन प्रणालियां इस्तेमाल की जाती हैं। (जैसप, 1990)। फिर भी हर समाज में कोई एक उत्पादन प्रणाली सबसे अधिक प्रयोग में लाई जाती है। जो उस समाज की आर्थिक प्रकृति तय करती है। यहाँ हम संक्षेप में कार्ल मार्क्स द्वारा चिन्हित चार प्रमुख उत्पादन प्रणालियाँ का वर्णन करेंगे।

8.2.1 एशियाई उत्पादन प्रणाली

एशियाई उत्पादन प्रणाली विशेष रूप से एक मौलिक उत्पादन प्रणाली है जो मानव समाजों में पहले से मौजूद रही है और अन्य दासता आधारित पूर्व पूंजीवादी उत्पादन प्रणालियों से बिल्कुल अलग है। एशियाई उत्पादन प्रणाली आदि समाजों में भी मौजूद थी जब लोगों का जमीन पर सामूहिक अधिकार होता था और सभी उत्पादों का समान वितरण संभव था। इस उत्पादन प्रणाली के चलते सामाजिक संबंध रिश्तेदायिों पर आधारित होते थे, और समाज वर्ग–विहीन समाज था। विद्वान तर्क देते हैं कि यह उत्पादन प्रणाली भारतीय समाज के इतिहास को समझने में सहयोगी नहीं है।

8.2.2 प्राचीन उत्पादन प्रणाली

प्राचीन उत्पादन प्रणाली पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की पूर्ववर्ती प्रणाली है। एशियाई उत्पादन प्रणाली से अलग, इस उत्पादन प्रणाली की प्रमुख विशेषता दासता है जिसमें उत्पादन संसाधनों का स्वामी उत्पादन के लिए गुलामों की सेवाएं लेता था तथा उनके श्रम से हुए सभी उत्पादों पर कब्जा कर लेता था, तथा उनके श्रम से हुए सभी उत्पादों पर कब्जा कर लेता था। गुलामों को स्वतंत्र रूप से उत्पादन का अधिकार नहीं था। चीजों का और अधिक उत्पादन इस बात पर निर्भर करता था कि नये गुलाम उत्पादन के लिये काम पर रखने की कितनी क्षमता उत्पादक समाज में है। गुलामों की वृद्धि पर का निश्चयन नये गुलामों की वृद्धि दर द्वारा निर्धारित नहीं होती थी। गुलामों को इस्तेमाल की वस्तु समझा जाता था और उन्हें अकेला रहना होता था उन्हें विवाह संतान पैदा करने का अधिकार नहीं था।

8.2.3 सामन्ती उत्पादन प्रणाली

सामन्ती उत्पादन प्रणाली एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जिसमें श्रमिक प्रमुख रूप से मौजूद रहता है, और शासक वर्ग तय करता है कि श्रमिक क्या उत्पादन करे। पूंजीवाद की तरह इस उत्पादन प्रणाली में भी श्रमिकों का अथवा काम करने वालों का सामन्तों द्वारा शासन होता है। जैसे भूस्वामियों द्वारा भूमिहीन कर्मियों का शोषण। इस उत्पादन प्रणाली में उत्पादन क्रिया से जुड़े लोगों का सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। उत्पादन करने वाले मजदूरों को अपना श्रम बेचने तथा उनके श्रम से उत्पन्न उत्पादों को बेचने के लिये विवश किया जाता है या इसलिये उत्पादन करने वाले लोग (श्रमिक) उन उत्पादों का उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुसार नहीं कर पाते। सामन्ती भूस्वामियों की आवश्यकताओं को पूरा करने का दवाब मजदूरों पर सदा बना रहता था, चाहे वह धन के रूप में या श्रम के रूप में। इसके अलावा उन्हें अपनी पारिवारिक सम्पत्तियों पर कर देना पड़ता था। यह सामन्ती उत्पादन प्रणाली का अनिवार्य हिस्सा है। किराया चुकाने की विवशता। बाजारों में कृषि उत्पादों का अन्य उत्पादों से विनिमय भी सामन्ती प्रणाली द्वारा ही तय किया जाता था (कारन्ती, 2014) कार्ल मार्क्स के अनुसार सामन्ती समाज के इस पक्ष में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की नींव रखी।

8.2.4 पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली

पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन के बाजार में मुनाफा कमाने के लिये बेचा जाता है। इस उत्पादन प्रणाली में उत्पाद का स्वामी पूंजीपति कहलाता है। मजदूरों के श्रम को पैसे से विनिमय किया जाता है, अर्थात उन्हें वेतन देकर उनसे उत्पादन का काम कराया जाता है। मजदूरों को ठेके के आधार पर भी काम पर रखा जाता है और उन्हें काम के बदले पैसा दिया जाता है। जितने भी उत्पाद मजदूर तैयार करता है उन सबका नियंत्रण एवं स्वामित्व पूंजीपतियों के अधीन होता है। कार्ल मार्क्स का मानना है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली मानव समाजों की विकास प्रक्रिया की एक ऐतिहासिक अवस्था है। एक दिन यह व्यवस्था नहीं रहेगी और समाजवाद द्वारा सारी व्यवस्था पर अधिकार कर लिया जायेगा। कुछ अगली इकाईओं में आप पूंजीवाद के बारे में पढ़ेंगे।

8.3 घरेलू उत्पादन प्रणाली

आर्थिक समाजवाद की एक प्रमुख धारणा उत्पादन प्रणाली है। घरेलू उत्पादन की उल्लेखनीय धारणा यह है कि इसके केन्द्र को समाज की उद्विकासवादी अवस्थाओं में तलाश किया जा सकता है। घरेलू उत्पादन प्रणाली उद्विकास की प्रक्रियाओं से गुजरने वाले समाज की एक ऐसी विशेषता थी जिसमें सामाजिक संबंध, विशेष रूप से नातेदारी खास महत्व रखती थीं। इन समाजों के लोग मिलकर काम करते थे और प्राकृतिक ऊर्जा को मानव श्रम, ज्ञान तथा कौशल द्वारा उपकरणों का इस्तेमाल करते हुए घरेलू उपयोग की वस्तुओं में बदल देते थे। इन समाजों में उत्पादन का स्तर और उत्पादों की खपत परिवार के सदस्यों के बीच उनकी आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित की जाती थी। और उत्पादन तथा उपभोग दोनों की प्रतिबन्ध मूलक सीमायें रखी जाती थीं।

घरेलू उत्पादन प्रणाली का उद्देश्य केवल उत्पादन नहीं है, परन्तु उसमें उत्पादों की खपत और वितरण का भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से बिल्कुल अलग घरेलू उत्पादन प्रणाली की अपनी अलग पहचान है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की तरह घरेलू उत्पादन प्रणाली में कोई स्वामी या कोई दास नहीं होता। घरेलू उत्पादन प्रणाली में उपभोग का सबसे अधिक महत्व होता है, और इस प्रकार यह प्रणाली प्रचलित भेदभाव को आधार प्रदान करती है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली और घरेलू उत्पादन प्रणाली में मुख्य अंतर यह है कि पूंजीवादी अर्थ प्रणाली में वेतन दिया जाता है अथवा उत्पादन की कीमत चुकाई जाती है ओर केंद्र में खपत होती है जबकि घरेलू उत्पादन प्रणाली में उत्पादन के बदले किसी को कुछ नहीं दिया जाता परन्तु यह मानकर चला जाता है कि उत्पादन करना परिवार के सभी सदस्यों अथवा नातेदारी का दायित्व है, खपत और उत्पादन के बीच रिश्तों का अनुबन्ध स्थायी रूप से मौजूद रहता है और इसीलिए सामूहिक योगदान से घरेलू उत्पादन प्रणाली चलती रहती है। घरेलू उत्पादन प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उत्पादन मुद्रा विनिमय या आर्थिक लाभ पर निर्भर नहीं करता। उत्पादों को इस्तेमाल करना और खपत उत्पादों की कीमत पर निर्भर नहीं हैं। उत्पादन प्रणाली उत्पादों के वितरण को समाहित करते हुए काम करती है क्योंकि घरेलू उत्पादन की मुख्य विशेषता नातेदारी का दायरा होता है। उत्पादों का वितरण नातेदारी के बीच पुरूषों द्वारा किया जाता है और प्रायः अनुवांशिकता के नियमों द्वारा नियंत्रित होता है।

ऐरिक वुल्फ कार्ल मार्क्स से अनुप्रेरित था। उत्पादन प्रणाली की धारणा ऐरिक वुल्फ के मानवशास्त्र पर किये कार्य से उत्पन्न हुई थी। यद्यपि घरेलू उत्पादन प्रणाली पर मीलेसॉक्स ने शोध प्रबंध तैयार किया था। उनका शोध ग्रंथ मेडेन्स, मील एण्ड मनी : केपिटलिज्म एण्ड डॉमेस्टिक कम्युनिटी (Maidens, meal and money: Captitalism and the Domestic Community) नामक शीर्षक से 1981 में प्रकाशित हुआ था।

घरेलू उत्पादन प्रणाली में उत्पादन प्रक्रिया में परिवार के लोग तथा नातेदार शामिल होते हैं। उत्पादन व पुनरूत्पादन की प्रक्रिया इन्हीं के कंधों पर चलती है। (मीलसॉक्स, 1981) इस प्रकार का उत्पादन अपनी आवश्यकता की पूर्ति या जीवन निर्वाह के लिए किया जाता है। इसमें सामाजिक संबंध उत्पादन के संसाधनों से निर्धारित नहीं होते, बल्कि मानव उत्पादन के संसाधनों पर नियंत्रण से तय होते हैं। कार्ल मार्क्स ने भी इस बात पर जोर दिया था कि मानव सजगता श्रमिकों के कार्यों से निर्धारित होती है।

घरेलू उत्पादन प्रणाली में नातेदारी के अनुबंधों के आधार पर श्रम का संगठन होता है। अतः वहां किसी का कोई प्रभुत्व नहीं होता और उत्पादन से जुड़ें लोगों के बीच संबंध शक्ति आधारित नहीं होते। इस कारण से अनेक लोग घरेलू उत्पादन प्रणाली को नातेदारी आधारित उत्पादन प्रणाली मानते हैं। इसका सामान्य उदाहरण खेत में काम करने वाला वो किसान है जो अपना पेट भरने के लिये और अपने परिवार को पेट भरने के लिये – अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खेतों में फसल उगाता है, न कि फसलों के उत्पादों से लाभ कमाने के लिये। इस उत्पादन प्रणाली में पुरूषों का काम कठिन होता है। वे खेतों में काम करते हैं, जबकि परिवार के अन्य सदस्य बीज बोने आदि में सहयोग करते हैं। फसल के बड़े हो जाने पर बच्चे फसलों की रखवाली करते हैं। परिवार के पुरूष ही फसलों में से अवांछित पौधों को निकालने का भी काम करते हैं। जिससे बोई गई फसल के पौधे पूरा खाद–पानी लेते हुए अच्छी तरह बड़े हो सकें, इस क्रिया को निराई कहा जाता है। स्त्रियां फसल में पैदा होने वाले उत्पादों को धूप में सुखाती हैं और उन्हें भविष्य में इस्तेमाल के लिये संग्रहित करती हैं। यह इस बात का उदारहण है कि श्रम और उत्पादन प्रक्रिया किस प्रकार परिवार के सदस्यों द्वारा नियोजित की जाती है और मुख्य रूप से विभिन्न लैंगिक और आयु वर्ग पर किस प्रकार निर्भर करता है।

8.4 उत्पादन शक्तियां

उत्पादन शक्तियां वे संसाधन है जिनके द्वारा प्राकृतिक स्त्रोतों से उत्पाद उत्पन्न किये जाते हैं। यह दर्शाता है कि किस सीमा तक मनुष्य उपलब्धियां प्राप्त करने के लिए प्रकृति पर नियंत्रण करता है। प्रकृति पर नियंत्रण मानव व शक्ति तथा मानव कौशल व अन्य उपकरणों पर निर्भर करता है। अतः उत्पादन की शक्तियों के विकास के साथ–साथ ही मनुष्य प्रकृति पर और अधिक नियंत्रण कर पाया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन शक्ति मानव शक्ति पर निर्भर है। यदि मानव शक्ति कम होगी तो प्रकृति पर नियंत्रण भी कम हो पायेगा। उत्पादन के संसाधनों में वे सभी उपकरण आते हैं जो उत्पादन के लिये इस्तेमाल किये जाते हैं। जैसे मशीने, श्रम, कौशल तथा विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकियां। प्रौद्योगिक विकास के अतिरिक्त श्रम प्रक्रियाओं में आने वाले परिवर्तन, नई ऊर्जा तथा काम करने की नई–नई जानकारियां भी उत्पादन की शक्तियों में शामिल हैं। कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो भौगोलिक अंचलों को भी उत्पादन की शक्तियों में शामिल करते हैं। आगे यदि उत्पादन की शक्तियों में और कोई परिवर्तन होता है तो इसका प्रभाव भी उत्पादन प्रक्रिया पर पड़ेगा।

जो समाज घरेलू उत्पादन प्रणाली से जुड़े हैं उनकी उत्पादन शक्तियों में समाज व्यवस्था आदि में परिवर्तन आते रहने के कारण, लगातार बदलाव आ रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण प्राकृतिक हैं, जैसे – भूस्खलन, जंगलों का करना, नदियों का सूखना आदि। कुछ परिवर्तन प्रौद्योगिक विकास के कारण भी आते हैं और उनके कारण उत्पादन की नई शक्तियां नये उपकरणों के रूप में आकार ग्रहण कर लेती हैं। परन्तु यह विकास यह दर्शाता है कि मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों को अपने परिश्रम के द्वारा अपने आजीविका के स्रोतों के रूप में परिवर्तित करने के लिये किस प्रकार लगातार संघर्ष कर रहा है। यह संघर्ष धरती पर रहने वाले मनुष्यों का प्रयास है ताकि जीवन यापन और विकास के लिये आवश्यक संसाधनों की कमी न पड़ जाये इसके लिये मनुष्य लगातार उत्पादन शक्तियों का विकास करता रहता है जो नये–नये उत्पादनों द्वारा मनुष्य के जीवन को बेहतर बना देती हैं। उत्पाद की शक्तियां मनुष्य

को यह ज्ञान भी देती है जिससे वह प्राकृतिक संसाधनों में वृद्धि कर सके। उत्पादन शक्तियों का जितना अधिक विकास होगा सामाजिक संबंध उतने ही विकसित होते जायेंगे। विकास की इस प्रक्रिया के दौरान तथा विकास के किसी खास बिन्दु पर सामाजिक संबंधों और उत्पादन शक्तियों के बीच टकराव भी उत्पन्न हो जाता है। और उसका कारण होता है उत्पादन की शक्तियों पर नियंत्रण करते समय सामाजिक संबंधों में अस्थिरता आ जाना। इससे जो आर्थिक बाजार के जानकार हैं उनके और जो आर्थिक बाजार के जानकार नहीं है उनकें बीच वर्ग संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार उत्पादन की शक्तियों का विकास सामाजिक–आर्थिक संबंधों के इतिहास को उजागर करता है। प्राकृतिक संसाधनों से अधिक से अधिक उत्पाद प्राप्त करने की समाज की शक्तियों का उत्पादन शक्तियों से सीधा संबंध है।

गतिविधि 1

अपने पड़ोस में रहने वाले दो परिवारों के सदस्यों का साक्षात्कार कीजिये और पता लगाइये परिवार के वयस्क सदस्य कौन–कौन से व्यवसाय से जुड़े हैं। अपने साक्षात्कार के आधार पर व्यवसायों तथा उत्पादन प्रणालियों की एक सूची तैयार कीजिये और – ''मेरे पड़ोस में उत्पादन प्रणालियां'' नामक शीर्षक पर एक निबंध लिखिये। अपने अध्ययन केन्द्र पर इस निबन्ध पर अपने मित्रों के साथ चर्चा कीजिए।

8.5 उत्पादन के संबंध

घरेलू उत्पादन प्रणाली का उद्‌गम केन्द्र पैतृक वर्ग आधारित समाज, एक क्रांति जो आज तक चली आ रही है। यह सामाजिक क्रांति सामाजिक संरचना को उत्पादन शक्ति में बदल देती हैं। विद्वान तर्क देते हैं कि उत्पादन प्रणाली में पुरूषों का वर्चस्व ने महिलाओं के वर्चस्व का स्थान छीन लिया है जो शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों में मौजूद रहा करता था। प्राकृतिक संपदा पर साम्यवाद तथा सामूहिक अधिकार को जो विचार उस दौर में समाज में मौजूद था, वह घरेलू उत्पादन प्रणाली के चलन में आ जाने के बाद समाप्त हो गया। इस परिवर्तन इस विचार से बल मिला कि प्राकृतिक संपदा के संरक्षण का अधिकर केवल पुरूषों के हाथ में रहना चाहिए। पैत्रिक संबंधों के आधार पर यह अधिक पिछली पीढ़ी के पुरूषों से अगली पीढ़ी के पुरूषों में जाते रहने की परम्परा पड़ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरूषों का स्त्रियों पर प्रभुत्व स्थापित हो गया। स्त्री के अधिकारों का पुरूषों द्वारा अतिक्रमण किये जाने से श्रमिक दासों में बदल गये। (लीकॉक एवं साफा, 1986)। इसने ही पुरूष तथा स्त्रियों को अलग–अलग वर्गों में तब्दील कर दिया। गैर–बाजारी सामाजिक सम्बंध जो ऐसी विचारधारा और शक्ति से नियंत्रित होता है जो स्त्रियों के श्रम को सही ठहराती है। कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि स्त्री आधिपत्य से पुरूष आधिपत्य कला बदलाव उत्पादन प्रणाली में क्षमता को बनाने रखने में मददगार है। स्त्री–श्रम को सही ठहराने वाला उनका विचार एक हिसंक संघर्ष को जन्म देता है। दूसरी ओर पुरूषों के श्रम की क्षमता के कारण विवाह के नियमों में परिवर्तन आ गये। पितृ–प्रधान विवाहों को मान्यता मिल गई और स्त्रियों का अदला–बदली की प्रथा आरंभ हो गई और स्त्रियों के श्रम का शोषण शुरू हो गया। इस प्रकार घरेलू उत्पादन प्रणाली में स्त्रियां नये वर्ग के रूप में दिखाई पड़ने लगीं और पुरूष वर्ग का स्त्री वर्ग पर वर्चस्व स्थापित हो गया।

घरेलू उत्पादन प्रणाली स्त्री को उसके श्रम के बदले आर्थिक लाभ नहीं देती। स्त्री को लैंगिक हिंसा भी झेलनी पड़ती है और शारीरिक सम्बंधों की आजादी भी उससे छीन ली गई। स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा के अन्य अनेक रूप भी घरेलू उत्पादन प्रणाली में देखे जा सकते हैं जिनके जड़े स्त्री के श्रम को सही ठहराने की मानसिकता में मौजूद हैं। स्त्रियों के श्रम से बचने के लिए स्त्रियों ने बच्चों के जन्म को सीमित रखने का विकल्प अपनाया है। लेकिन गर्भपात पर प्रतिबंध लगाकर पुरूषों ने स्त्रियों के इस अधिकार पर भी कब्जा कर लिया है। घरेलू उत्पादन प्रणाली में वर्गीय सम्बंधों को लैंगिक आधारित बना दिया है, जो सरासर (गलत) है क्योंकि स्त्री व पुरूष के बीच वर्गीय संबंध भी विचारधारा से नियंत्रित होते थे। इसलिए वैचारिक आधार पर कुछ पुरूषों को पितृ प्रधान उत्पादन प्रणाली में नई श्रेणी के सत्ता वर्ग से बाहर रखा गया है। उन्हें दास माना गया और अनेक प्रकार के कामों पर लगाया गया, परन्तु स्त्रियों से उन्हें दूर रखा गया। द्विभाजी ढांचे में वर्ग में अनेक प्रकार की खामियां हैं। परन्तु फिर यह समाज द्वारा विरोधाभासों में पूरी तरह लागू होता है। जैसे पुरूष व स्त्री, बालकों और किशोरों, वृद्ध एवं वयस्क आदि में।

बॉक्स 8

आदिकालीन साम्यवाद क्या?

शिकार करने तथा भोजन इकट्ठा करने वाले आदिकालीन मानवों द्वारा मांस को मिल बांट कर खाना आदिकालीन साम्यवाद का उदाहरण है।

(Source: https://www.worldatlas.com/articles/what-is-primitive-communism.html).

आदिकालीन साम्यवाद का विचार रीतिरिवाजों और विश्वास प्रणालियों के सिद्धांतों पर आधारित है जो समाज में उत्पादों तथा सेवाओं के उत्पादन पर नियंत्रण रखती थीं। समाज पारंपरिक कृषि, शिकार, भोजन इकट्ठा करना तथा मछली पकड़ना आदि पर आधारित था। जहां आदान–प्रदान प्रथा विनिमय का आधार थी। आदिकालीन साम्यवाद का विचार कार्ल मार्क्स तथा फ्रीड्रिच ऐंजल्स द्वारा प्रतिपादित किया गया था। जहाँ सामाजिक संबंध समानतावादी तथा सामूहिक प्रभुत्व पद्धति पर आधारित थे। आगे भी सामाजिक संबंध समाज के मूलभूत संसाधनों पर सामूहिक अधिकार पर अधिकार या सम्पत्ति के निजी प्रभुत्व को बढ़ावा नहीं मिला। क्योंकि जो भोजन

एकत्रित किया जाता था, उसे सब मिल बांटकर खा लेते थे। कुछ भी भविष्य के लिए बचाकर नहीं रखा जाता था। पर्याप्त मात्रा में शिकार प्राप्त हो जाना या भोजन सामग्री एकत्रित हो जाना यदि संभव नहीं हो पाता था, तब भी समाज के समझदार व जिम्मेदार लोग भोजन के उत्पादन और समान रूप से वितरण में लगे रहते थे। उपकरणों व निवास स्थलों पर सामुदायिक प्रभुत्व रहता था। श्रम विभाजन को स्त्रियों व पुरूषों द्वारा समान रूप से स्वीकार किया जाता था। जब स्त्रियां भोजन सामग्री एकत्रित करने में संलग्न रहती थीं, पुरूष शिकार करने चले जाते थे। जो मनुष्य कमजोर या कम विकसिते होते थे, जैसे बच्चे, बूढ़े तथा गर्भवती स्त्रियां, उन्हें स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा जुटाई गई भोजन सामग्री उदारतापूर्वक प्रदान की जाती थी।

(Source: https://www.worldatlas.com/articles/what-is-primitive-communism.html).

उत्पादन के संबंध ही वास्तविक सामाजिक संबंध होते हैं। जिन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है पहला प्रकार है प्रौद्योगिकी आधारित संबंध तथा दूसरा प्रकार है अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण। पहले का महत्व उत्पादन पद्धतियों व उत्पादन प्रक्रिया में है तथा दूसरे का संबंध सम्पत्ति पर प्रभुत्व से है उत्पादन के संबंधों को श्रमिक व मालिक के बीच के संबंधों की तरह नहीं समझा जाना चाहिए। घरेलू उत्पादन प्रणाली में सामाजिक संबंध समाज के उन लोगों के बीच बन जाते हैं जो सामूहिक उत्पादन प्रक्रिया में मिलकर काम करते हैं। उत्पादन के संबंधों की दृष्टि से श्रम प्रक्रिया को देखें तो पायेंगे कि इसके केंद्र में उत्पादन की उपयुक्तता रहती है – एक प्रक्रिया जिसमें किसी विशेष समूह के लोग शामिल होते हैं। दूसरे समूह के सदस्य या कुछ अपरिचित लोग उत्पादन की उपयुक्तता से संबंधित नहीं होते। यदि कोई अजनबी व्यक्ति जो समूह का सदस्य नहीं है, वह उत्पादों को अपना कर सकता है जब उसका उत्पादन समूह के लोगों से कोई सम्बंध हो। परन्तु अक्सर रिश्तेदारी के दायरे में या समूह में आने वाले लोगों के बारे में ही यह माना जाता है कि उनका घरेलू उत्पादन प्रणाली में उत्पादन से संबंध होता है।

बोध प्रश्न 1

1) उत्पादन प्रणाली की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) उत्पादन प्रणालियों में बेमेल का पता लगाइए –

ऐशियाई, सामंती, पूंजीपति, प्राचीन, आधुनिक

.....

.....

.....

3) घरेलू उत्पादन प्रणाली क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) घरेलू उत्पादन प्रणाली गैर–नातेदारी आधारित आर्थिक प्रणाली है। सत्य ( ) / असत्य ( )

5) घरेलू उत्पादन प्रणाली में वितरण किस प्रकार के संबंधों के माध्यम से संपन्न होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 घरेलू उत्पाद प्रणाली की आलोचनाएं तथा प्रतिक्रिया

घरेलू उत्पादन प्रणाली की समाज में कटु आलोचना हुई है। नीचे कुछ आलोचनाओं तथा उनके जवाबों का विवरण दिया गया है।

8.6.1 घरेलू उत्पादन प्रणाली का अस्तित्व कभी था ही नहीं

कुछ विद्वानों का मत है कि मार्क्स तथा ऐंजल्स ने केवल पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की खोज की थी, अतः घरेलू उत्पादन प्रणाली जैसी कोई चीज समाज में कभी मौजूद ही नहीं रही। क्योंकि मार्क्स और ऐंजल्स एक खास काल खंड में मौजूद थे जो पूंजीवादी काल खंड के रूप में जाना जाता है, जिसमें स्त्रियों तथा बच्चों का शोषण होता था। इस तरह के शोषण की जड़े घरेलू उत्पादन प्रणाली में पाई जाती हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि मार्क्स और ऐंजल्स ने घरेलू उत्पादन प्रणाली का पता तो लगाया था, परन्तु वे इसे एक अलग प्रणाली के रूप में पहचान नहीं दे पाये थे। क्योंकि इसमें बहुत से ऐसे लक्षण थे जो सामान्यतः पूंजीवादी उत्पादन में भी पाये जाते हैं।

8.6.2 शक्तियाँ, संबंध तथा उत्पादन के साधन पितृ प्रधान परिवारों में खत्म होते जा रहे थे

मार्क्स तथा एंजिल्स का तर्क था कि उत्पादन की शक्तियां संसाधन तथा संबंध पितृ–प्रधान समाजों में लुप्त होते जा रहे थे। यद्यपि नव–मार्क्सवादी यह दावा करते हैं कि घरेलू उत्पादन प्रणाली की विभिन्न शक्तियां क्या है, यह पहचानना मुश्किल नहीं है। उत्पादन की कुछ महत्वपूर्ण शक्तियों, जैसा कि पिछले खण्ड में बताया गया है, उपकरण, संसाधन आदि हैं।

8.6.3 वंशानुक्रम से घरेलू उत्पादन प्रणाली तक आये परिवर्तन को पहचानना कठिन है

इस तर्क के विरोध में यह दावा किया जाता है कि वंशानुक्रम से घरेलू उत्पादन प्रणाली के अस्तित्व में आने तक की यात्रा में अनेक प्रकार की बाधाओं से गुजरना पड़ा जिससे उत्पादन शक्तियां अवरूद्ध हुईं। फिर भी सामाजिक क्रांति ने सामाजिक संबंधों की सभी बाधाओं को चीर दिया। समाज में वितरण और उपभोग समान रूप से हो रहा था। चीजों का अतिरिक्त उत्पादन उत्पादन की नई शक्तियों के विकसित हो जाने के कारण संभव हो पाया था। मौजूदा सामाजिक संबंध किसी एक खास वंशानुक्रम समूह को बढ़ते हुए अतिरिक्त उत्पादन को एकत्रित करने की अनुमति नहीं देते थे। बड़ी आयु के पुरूषों ने मौजूदा सम्बंधों में अतिरिक्त उत्पादन पितृ सत्तात्मक परिवारों को कब्जा करने दिया। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन के संसाधन जो पहले संयुक्त रूप से नियंत्रित किये जाते थे, परिवार के केवल पुरूष सदस्यों के हाथों में चले गए और जो अतिरिक्त उत्पादन हुआ था, वह भी पुरूषों के हाथों चला गया।

8.6.4 पुरूष कभी भी उत्पादन के उत्तराधिकारी नहीं बन पाए

जब से पुरूषों ने उत्पादन के विभिन्न संसाधनों तथा उत्पादन की शक्तियों पर आधिपत्य जमा लिया, तब से ही वे अपने–अपने समाजों में शासक बन बैठे। इस परिवर्तन का एक कारण लिंग विशेष की भूमिकाएं हैं। उन्होंने स्त्रियों को खास तरह की गतिविधियों में शामिल होने पर रोक लिया (मर्डोक व प्रोवोस्ट, 1973)। इस प्रकार का लैंगिक आधारित कार्यों का बंटवारा प्राकृतिक श्रम विभाजन कहा जाता है (ब्राऊन, 1970)। यद्यपि शिकार करने वाले तथा भोजन एकत्रित करने वाले समाजों में स्त्री और पुरूष दोनों सामाजिक उत्पादन में बराबर के साझीदार हुआ करते थे। जहाँ पर लैंगिक श्रम विभाजन नहीं था। घरेलू संरचना में समूचा समुदाय सम्मिलित था और उत्पादन प्रक्रिया में पुरूष एवं महिला दोनों शामिल थे जिससे पूरे समुदाय का जीवन निर्वाह होता था।

8.7 घरेलू उत्पादन प्रणाली में राजनीति

घरेल उत्पादन प्रणाली उत्पादन प्रणाली का समानतावादी रूप है। यद्यपि पितृ प्रधानता की अवधारणा वैचारिकता और शक्ति से निर्धारित होती है तथा इस उत्पादन प्रणाली को बार–बार दुहराती है। घरेलू उत्पादन प्रणाली को ऐतिहासिक आधार पर इस तरह पुन निर्मित किया जा सकता है कि स्त्रियों के विरुद्ध दबावों के विश्लेषण के अंतराल को भरा जा सके। ऐतिहासिक रूप से इसका महत्व इस बात में है कि उन कठिनाइयों पर नियंत्रण किया जाय जो आगे रिश्तेदारी आधारित संबंधों के मार्ग में बाधा बनती है तथा उत्पादन शक्तियों का संवर्धन करती हैं। कोई ऐसी राजनैतिक शक्ति होनी चाहिए जो घरेलू उत्पादों को खपत से अधिक बढ़ा दे। आरंभिक समाजों में घर के मुखिया हुआ करते थे जो रिश्तेदारी आधारित संबंधों से अलग नहीं चलते थे, परन्तु आपतिकाल के लिए कुछ अधिक उत्पादन करवाते थे जिसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जाता था। समुदाय के लोगों और मुखिया के बीच एक तरह से पारस्परिकता हुआ करती थी जो उनके बीच उत्पादों के आदान–प्रदान का निश्चय करती थी। खासकर लोगों की ओर से मुखिया को दिया जाना। परन्तु मुखिया समाज तक पहुंच सदैव सामूहिक होती थी तथा लोकहितकारी होती थी उसकी तुलना में जो

लोग प्रायः अपने परिवारों के बारे में व्यक्तिगत रूप से सोचते थे। (शाहलिन, 1972)। अनेक राजनैतिक ताकते हैं जो अनगिनत तरीके से उत्पादन विधियों को गति प्रदान करता है। कुछ समाजों में जिनमें घरेलू उत्पादन प्रणाली काम करती हैं, प्रभुत्व संपन्न होने के कारण पुरूष अपने ही समूहों का शोषण करते हैं। वे उत्पादों को / उत्पादन को अपने बड़े समूह में मिला लेते है जिससे वे राजनैतिक स्तर प्राप्त कर सकें।

दुनिया के कुछ भागों से वंशानुक्रम से जुड़े समूहों के नेता होते हैं। जो संयुक्त रूप से एकत्रित किए गये, सभी संसाधनों पर नियंत्रण करने लगते हैं। अपने राजनैतिक प्रभाव के कारण, ये नेता दावत संयुक्त व सामूहिक संसाधनों का इस्तेमाल अपने राजनैतिक लाभ के लिए आयोजित की गई दावतों के लिए करते हैं। इस प्रकार की सामाजिक संबंधों में दूसरों के श्रम का शोषण करते हैं। घरेलू उत्पादन प्रणाली अन्य उत्पादन प्रणालियों के बीच उत्पादन की सह–प्रणाली बनकर रह गई और श्रम के बढ़ते श्रम करने वालों को कुछ नहीं देने के कारण आलोचना विषय बन जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) कारण बताइए, मार्क्स और एंजिल्स का यह विश्वास क्यों था कि घरेलू उत्पादन प्रणाली का अस्तित्व कभी था ही नहीं।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्स और एंजिल्स यह मानते थे कि उत्पादन की शक्तियां व संबंध पितृ–प्रधान परिवारों में निहित होते थे। सत्य ( ) / असत्य ( )

3) वस्तुओं का समान/असमान बंटवारा या वितरण घरेल उत्पादन प्रणाली की विशेषता है।

.....

.....

.....

.....

.....

4) प्राकृतिक श्रम विभाजन से आपका क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) खपत के स्तर से अधिक घरेलू उत्पादन में वृद्धि कौन सी शक्ति कर सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

8.8 सारांश

घरेलू उत्पादन प्रणाली एक नातेदारी आधारित उत्पादन प्रणाली है, श्रमिकों से सम्बंध इसकी विशेषता है। जीवन निर्वाह के लिए यह एक सामूहिक उत्पादन प्रणाली है यद्यपि उत्पादन की अनेक प्रणालियां होती है जो हमारे समाजों में अस्तित्व में थीं, उनका संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस इकाई में विशेष रूप से घरेलू उत्पादन प्रणाली की व्याख्या की गई है। हर उत्पादन प्रणाली के अपने संसाधन होते हैं, शक्तियां होती हैं। इस इकाई उत्पादन में की शक्तियों तथा की संबंधों व्याख्या की गई है जो घरेलू उत्पादन प्रणाली में मौजूद रहते थे। कुछ बड़े आलोचकों की कटु आलोचना के कारण घरेलू उत्पादन प्रणाली को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस इकाई में उत्पादन प्रणाली में राजनैतिक पहलू पर भी प्रकाश डाला गया है।

8.9 संदर्भ

जे ब्राउन (1970). ए नोट ऑन डिवीजन ऑफ लेबर बाई सैक्स. अमेरिकन एन्थ्रोपिोलोजिस्ट, 1078।

ई लीकॉक एण्उ एच साफा (1986). वूमन्स वर्क : डिवलपमैंट एण्ड डिवीजन ऑफ वर्क वाइ जैन्डर. साउथ हैडली : वर्जिन एण्ड गार्वे।

सी. मीलासॉक्स मेडेन्स, मील एण्ड मनी : केपीटलिज्म एण्ड द डोमैंस्टिक कम्युनिटी. कैम्ब्रिज।

जी.पी. मर्डोक एण्ड सी. प्रोवोस्ट (1973). ''फैक्टर्स इन द डिवीजन ऑफ लेवर्स वाई सैक्सः ए क्रॉस कल्चरल एनालाइजिज''. एथनोलॉजी, 12 : 203 – 225।

आर. एम. रोजेन्सविग (2012). मैटीरियलियज्म मोड ऑफ प्राडक्शन एण्ड ए मिलीनियम ऑफ चेन्ज इन साउदर्न मैक्सिको''. जरनल ऑफ आर्कियोलॉजीकल मैथड एण्ड थ्योरी, 19–1–48।

एम. साहलिन्स (1972). स्टोन एज इकोनॉमिक्स. एलडाइनः शिकागो।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उत्पादन प्रणाली मानव शक्ति को प्रौद्योगिकी द्वारा ऊर्जा में बदलने की एक प्रक्रिया है।

2) आधुनिक

3) घरेलू उत्पादन प्रणाली जीवन निर्वाह का एक माध्यम है जिसमें संसाधनों के उत्पादन और पुनर्उत्पादन का सिलसिला अन्तर्निहित हैं।

4) असत्य

5) पैतृक

बोध प्रश्न 2

1) यद्यपि काल मार्क्स और ऐंजिल्स ने घरेलू उत्पादन प्रणाली का आविष्कार किया था परंतु वे इसे पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से अलग एक स्वतंत्र उत्पादन प्रणाली के रूप में पहचान नहीं दे पाये थे।

2) असत्य

3) समान

4) प्राकृतिक श्रम विभाजन का अर्थ है लिंग आधारित श्रम का विभाजन अथवा व्यक्ति की लैंगिक पहचान।

5) राजनैतिक शक्ति।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 कृषक अर्थव्यवस्था*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 किसान तथा कृषक अर्थव्यवस्था

9.3 भारतीय किसान तथा कृषक संरचना

9.4 कृषक अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

9.5 किसानों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति

- 9.5.1 आजीविका का एक मात्र आधार कृषि भूमि
- 9.5.2 पारिवारिक श्रम
- 9.5.3 पूंजी का संचयन
- 9.5.4 जीवन निर्वाह खपत के लिए उत्पादन

9.6 किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था

9.7 किसान आंदोलन

- 9.7.1 प्रथम चरण 1857–1921
- 9.7.2 द्वितीय चरण 1923–1946
- 9.7.3 आजादी के बाद का चरण

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- किसान कौन है तथा किसानों की अर्थव्यवस्था का वर्णन,
- भारत किसान तथा उनकी संरचना की व्याख्या,
- किसानों की विशेषता तथा कृषक समाज के आर्थिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं का वर्णन,
- कृषक समाजों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का वर्णन,
- भारत में किसानों आंदोलनों के विविध चरणों का जानकारी।

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित।

9.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई 'घरेलू उत्पादन प्रणाली' में आपने घरेलू उत्पादन प्रणाली सहित विविध अर्थव्यवस्थाओं में अनेक प्रकार की उत्पादन प्रणालियों के बारे में पढ़ा। इस इकाई में आप किसानों की अर्थव्यवस्था के बारे में पढ़ेंगे। अतीत काल से विभिन्न काल खंडों में कृषक समाज विश्व के सभी देशों में मौजूद रहे हैं। कृषि मानव की सर्वप्रथम आर्थिक प्रणाली है। इस इकाई में हम किसानों की आम धारणाओं तथा उनकी अर्थव्यवस्था का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में भारत के कृषक–समाज की संरचना तथा आंतरिक गतिविधियों पर भी प्रकाश डाला जायेगा। भारत में कृषि समाज के तीन प्रमुख घटक हैं – कृषि भूमि के स्वामी, खेतों में हल चलाने वाले किसान तथा कृषि कार्यरत भूमिहीन मजदूर। इस विस्तृत जानकारी के द्वारा इस इकाई में किसानों की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को चिन्हित करने का प्रयास किया जायेगा। भारतीय कृषक समाज किस तरह भारत की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को चिन्हित करने का प्रयास किया जायेगा। भारतीय कृषक समाज किस तरह भारत की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति का अभिन्न अंग है, इस पर भी प्रकाश डाला जायेगा। किसानों की चार महत्वपूर्ण पहलू हैं – (i) भूमि, जो आजीविका का साधन है, (ii) परिवार श्रम, (iii) पूंजी तथा जीवन–निर्वाह, (iv) बाजार व्यवस्था के उद्भव के साथ किसानों का बाह्य शक्तियों द्वारा शोषण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। इन शोषणों के विरुद्ध बड़े–बड़े प्रदर्शन व आंदोलन हुए। इस इकाई में कृषक आंदोलनों तथा उनसे जुड़ी गतिविधियों का तीन चरणों में वर्णन किया जायेगा जिससे भारत में विभिन्न काल खंडों में हुए समस्त आंदोलनों को समझने में आसानी रहे।

9.2 किसान एवं कृषक अर्थव्यवस्था

किसानों की अर्थव्यवस्था की गहराइयों में जाने से पहले हम इससे जुड़े प्रमुख पहलुओं को जानने का प्रयास करेंगे। किसान कौन हैं, यह समझायेंगे तथा फिर किसानों की अर्थव्यवस्था पर विचार करेंगे।

किसान वह व्यक्ति है जो खेतों में काम करता है और फसलें उगाता है। कोई भी व्यक्ति जो कृषि कार्यों में लगता है – जो खेती की जमीन का स्वामित्व ग्रहण करता है, भूमिहीन श्रमिक की भूमिका में होता है या खेतों में काम करने और फसल उगाने का काम करता है, उसे किसान कहा जायेगा। सामाजिक विज्ञान से जुड़े अनेक विद्वान किसानों को विषमरूपी समूह मानते हैं। जबकि कुछ विद्वान किसानों को समरूप समूह मानते हैं। किसान की व्याख्या के बारे में विभिन्न विद्वानों के बीच स्पष्टता नहीं है, इसीलिए उनके विचार परस्पर मेल नहीं खाते। ए. एल. क्रोबर की 1948 में एक शोध प्रकाशित हुआ था – एंथ्रोपोलॉजी। इस शोध में क्रोबर ने किसान शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उसने (1948) किसान को समरूप समूह कहा है जो बाजार से अपने आर्थिक सम्बंधों को साझा करता है। उसने किसान को ''पार्ट सोसाइतजी विद पार्ट कल्चर' (Part Societies with part culture") कहा है (क्रोबर, 1948) यह परिभाषा बताती है कि किसान एक बड़े समाज के अंग होते हैं, परन्तु वे अपनी अलावा सांस्कृतिक पहचान रखते हैं – जैसे खेतों से उनका रिश्ता आदि। यह पहचान उन्हें दूसरों से अलग करती है।

बॉक्स 9.0

'संस्कृति' शब्द का उद्गम फ्रांसीसी भाषा से हुआ लगता है। लातिन भाषा के 'कोलरी' (colore) शब्द से इसकी निकासी मानी जाती है। जिसका अर्थ से धरती से जुड़ा हुआ तथा फसल उगाने तथा पोषण करने वाला। इतना ही नहीं अन्य अनेक ऐसे शब्दों से भी जो ''उगाने की क्रिया से जुड़ी गतिविधियों की व्याख्या करते हैं।'' (डी. रोसी, 12, जुलाई, 2017)।

इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'कल्चर' शब्द 'एग्रीकल्चर' से निकला है।

लम्बे समय से किसान 'दमन' और जोर–जबरदस्ती सहते आये हैं। परन्तु उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति समाज में बड़ा परिवर्तन लाई है। 18वीं शताब्दी के किसानों की उत्पादन प्रणाली शेष समाज से एक दम अलग है। उसके बाद की शताब्दियों में जमीन का गैर–बराबर बंटबारा किया गया था, उनकी आय तथा बाजार से उनकी सम्बंध पद्धतियों का भी उसी तरह बंटवारा किया गया था। यह असमानता हाथ से काम करने वाले तथा दूसरों से काम करवाने वाले दोनों प्रकार के किसानों पर लागू होती है। खेतों में काम करने वाले मजदूर वर्ग के समर्थन में खड़े हुए जबकि स्वयं काम न करने वाले किसान जो अपने खेतों में भूमिहर मजदूरों से काम कराते थे, वे पूंजीपतियों के समर्थन में खड़े हुए। मजदूर वर्ग के लिए यह क्रांतिकारी समर्थन था। तथा पूंजीपतियों के लिए भी उन्हें मिला समर्थन क्रांतिकारी था। इससे दूसरों से खेती कराने वाले भूस्वामी किसानों और पूंजीपतियों के बीच वर्ग तथा शक्ति के सम्बंध विकसित हो गये।

कृषक अर्थव्यवस्था एक प्रकार से ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। इसमें खेती–किसानों से जुड़े लोग शामिल हैं जिसमें घरके सदस्य उत्पादन की प्राथमिक इकाई है। उत्पादन की मात्रा, खपत का स्तर तथा बचा हुआ उत्पाद आदि का प्रमुख घटक परिवार है। परिवार की अर्थव्यवस्था की आय का मुख्य स्रोत कृषि है जिसके परिवार के सदस्य अपने श्रम का निवेश करते हैं। किसानों की अर्थव्यवस्था इस प्रकार विकसित हुई है कि उसमें किसान की आजीविका से सम्बंधित अनेक आयाम शामिल हैं – सांस्कृतिक, सामाजिक तथा भौतिक आयाम।

9.3 भारतीय किसान तथा कृषक संरचना

भारत में बड़ी संख्या में लोग गांवों में निवास करते हैं और उनकी आजीविका का मुख्य साधन खेती हैं। भारत में किसानों की संरचना जाति, नृजातीयता, धर्म, भाषा आदि आधारित है। थॉरनर (1966) ने भारत में कृषक वर्ग की संरचना का अध्ययन करते समय तथा भारतीय कृषि की प्रकृति का अध्ययन करते समय विभिन्न प्रकार के कृषक वर्गों का पता लगाने के लिए तीन सिद्धांत तैयार किये थे। तीन सूत्री सिद्धांत में जमीन से प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आमदनिया शामिल है, (जैसे किराया, फसल तथा वेतन)। अधिकारों की प्रकृति (जैसे स्वामित्व तथा किराएदारी, फसल का हिस्सा या कोई अधिकार नहीं) तथा खेत में किया गया काम (कोई काम नहीं करना, आंशिक काम, पारिवारिक श्रम द्वारा किया गया काम, वेतन के बदले काम करना आदि)।

थॉरनर (1966) के अनुसार यह मापदंड भारत में कृषि कार्यों से जुड़े लोगों के तीन वर्गों की अलग–अलग पहचान करने में मदद करता है। भारत में इन तीनों वर्गों में जो लोग शामिल हैं, उन्हें भूस्वामी, किसान तथा मजदूर कहा जाता है, भूस्वामी खेती की जमीन के मालिक होते हैं – ये संपन्न व अमीर होते हैं। किसान उन्हें कहते हैं जो खेतों में स्वयं काम करते हैं। वे या तो अपनी जमीनों के मालिक होते हैं या अन्य भूस्वामियों के खेतों को किराये पर लेकर उनमें खेती करते हैं। इन किसानों को भी दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – छोटे भूस्वामी, तथा जीवन–निर्वाह के लिए दूसरों के खेत किराये पर लेकर उनमें फसलें उगाने वाले किसान। कृषि पर निर्भर तीसरा वर्ग जो मजदूर कहलाता है, उसे भी तीन उपविभागों में बांटा जा सकता है – कुल कम जमीन वाले गरीब किसान, बटाई पर खेती करने वाले तथा भूमिहीन मजदूर।

गतिविधि 1

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास या कहानियां पढ़िए अथवा प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल का साहित्य पढ़िए। अपनी स्थानीय भाषा में इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। अब उनके लेखन के आधार पर ग्रामीण जीवन पर एक आलेख तैयार कीजिए। अपने विचारों अपने अध्ययन केंद्र पर जाकर अपने साथियों के साथ प्रकट कीजिए।

डेनियल थोरनर (1966), भू–स्वामियों की आय का मुख्य स्रोत उनकी जमीन पर उनका मालिकाना हक था। बड़े भूस्वामी जमींदार कहलाते थे। वे अपनी कृषि–भूमि को ऊँचे किरायों पर फसल उगाने वाले किसानों को देते थे। उन्हें जमीन किराये पर उठाने के बदले मोटी रकम मिल जाती थी, फिर भी वे मजदूरों की पगार में कटौती करते रहते थे। बड़े भू–स्वामी कृषि संबंधी कोई काम नहीं करते थे। वे अच्छी पैदावार के लिए भूमि प्रबंधन का दायित्व भी अपने हाथों नहीं रखते थे। दूसरी श्रेणी के भू–स्वामी भी बड़ी जमीनों के मालिक थे। उनकी जमीने उनके निवास स्थान के निकटवर्ती क्षेत्रों में होती थीं। ये भी संपन्न होते थे और खेतों में स्वयं काम नहीं करते थे। वे मजदूरों से खेतों में काम करवाते थे और स्वयं उनके कामों का निरीक्षण करते थे। मजदूर ही खेतों में काम करते थे और भूमि–प्रबंधन करते थे या तो जमीनों पर इनके अधिकार पारंपरिक होते थे या उनके अपनी जमीनों के अधिकारों पर वैधानिक अधिकार भी होते थे। परन्तु वे मालिकों के बराबरी के नहीं होते थे।

किसानों को अन्य श्रेणियों में छोटे भूस्वामी होते हैं जो स्वयं अपने खेतों में काम करते हैं। वे केवल फसल काटने के लिए मजदूरों को काम पर लगाते हैं, अन्य सारे काम स्वयं करते है। दूसरी ओर वे किसान होते हैं जो बहुत सारी जमीनें किराये पर ले लेते हैं और इन खेतों में काम करके फसलें उगाने के इनके अधिकार सुरक्षित रखते हैं। किसानों की तीसरी श्रेणी में वे मजदूर आते हैं जो दूसरों के खेतों में काम करके गुजारा करते हैं। वे कुछ जमीन फसल उगाने के लिए भू–स्वामियों से ले लेते हैं और उसमें होने वाली पैदावार से अपने परिवारों का जीवन–निर्वाह करते हैं। उनके जमीनों पर काम करने के अधिकार अस्थायी होते हैं। वे इसके बदले मजदूरी प्राप्त करते हैं और यह मजदूरी भूमि की पैदावार से ही प्राप्त करते हैं। अतः वे उतना ही पैदा करते हैं जितने में उनकी मजदूरी निकल आए। दूसरी उप श्रेणी में फसलों में साझेदारी आती है। वे खेतों में दूसरों के लिए काम करते हैं और फसल में हिस्सा लेते हैं। अंतिम उप श्रेणी में भूमिहीन मजदूर आते हैं। वे मजदूरी पर दूसरों के खेतों में काम करते हैं और मजदूरी के रूप में जो धन उन्हें प्राप्त होता है उससे अपने परिवारों का खर्च चलाते हैं।

9.4 कृषक अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

किसानों तथा किसानों की अर्थव्यवस्था पर ऊपर दिये गये विवरण के आधार पर अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं।

1) कृषक अर्थव्यवस्था में उत्पादन की प्रथम इकाई किसानों के परिवारों के सदस्य हैं जो छोटे या बड़े हो सकते हैं।

2) कृषक अर्थव्यवस्था में परिवार का आकार प्रौद्योगिक आवश्यकताओं तथा आर्थिक आवश्यकताओं के आधार पर तय किया जाता है।

3) किसानों के परिवार प्रायः बड़े होते हैं और तीन–तीन पीढ़िया एक साथ रहते हैं। छोटे परिवार में भी माता–पिता तथा अविवाहित बच्चे सब एक साथ रहते हैं।

4) वंशानुगत चली आ रही खेती पर परिवार के सारे सदस्य निर्भर करते हैं।

5) किसान गहन कृषिवादी होते है और पूरी तरह खेती के कामों से ही जुड़े रहते हैं और इसीलिए वे प्रायः आसीन होते हैं। वे कृषि भूमि के निकटवर्ती क्षेत्र में निवास करते हैं। वे एक तरह से एक ही जगह बसे आदिवासी होते हैं। अन्य आर्थिक समाज जो कृषक उत्पादन प्रणाली से पहले हुआ करते थे, उनसे ये बिल्कुल अलग प्रकार के होते हैं।

6) कृषक समाज अक्सर छोटे होते हैं, जिनके सदस्य अधिकतर परम्पराओं पर निर्भर करते हैं तथा वे अपने निवास स्थान तथा अर्थव्यवस्था में किसी तरह का बदलाव नहीं चाहते।

7) किसान समुदायों को समाज में उनके ग्रामीण रहन–सहन के कारण अन्य समाजों की तुलना में पिछड़ा हुआ समझा जाता है इसका कारण है उनका शहरी आबादी से कटा होना। इससे उनमें एक प्रकार की हीनता की भावना आ जाती है और वे अज्ञानी तथा गरीब ही रह जाते हैं। कुछ विद्वान यह दावा करते हैं कि किसानों की गरीबी का कारण केवल यह है कि वे जीवन भर केवल खेती पर निर्भर रहते हैं। और यह निर्भरता वंशानुगत है।

8) कृषक अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन है। किसानों के बीच रूतवे (शक्ति) पर आधारित संबंध होते हैं, जिसका निश्चयन भी लैंगिक आधार पर किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) किसान कृषक कौन होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कृषक समाज में उत्पादन की प्राथमिक इकाई क्या होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) डैनियल फॉर्नर ने भारतीय कृषक वर्गों की तीन मौलिक श्रेणियां चिन्हित की हैं उनके नाम बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

4) किसानों को अक्सर पशुपालक कहा जाता है (सत्य) (असत्य)

5) किसान ..... समूह होते हैं (समरूपी अथवा विषमरूपी)।

9.5 किसानों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति

कृषक समाज अथवा कृषक अर्थव्यवस्था दोनों ही जटिल होते हैं उनके विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। जिनका एक साथ अध्ययन करना जटिल है। इसका कारण यह है कि कृषक अर्थव्यवस्था का हर रूप अलग–अलग दिखाई पड़ता है। इनमें से कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो कृषि पूर्व समाजों में भी पाई जाती थीं। कुछ ऐसे आयाम हैं जो किसानों की जीवन पद्धतियों तथा उनकी अर्थव्यवस्था में शामिल है। इन आयामों में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक आयाम शामिल हैं। किसान प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। अतः उनकी समृद्धि तथा शक्ति सरकार से उनके संबंधों द्वारा नियंत्रित होती है। कुछ विद्वान जिन्होंने कृषक समाजों का अध्ययन किया है उन्हें इसकी अनेक विशेषतायें देखने को मिली हैं। वे किसानों आर्थिक प्रतिमानों तथा सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों पर जोर देते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जिन्होंने कृषक समाजों का अध्ययन सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों पर किया है, उन्होंने कुछ विशेष स्पष्ट घटकों का विवरण दिया है जिनकी व्याख्या नीचे की जायेगी।

9.5.1 आजीविका का एकमात्र आधार कृषि भूमि

कृषक परिवार पूरी तरह उन्हीं संसाधनों पर निर्वाह करने के लिये विवश होते हैं जो उन्हें कृषि कार्य से प्राप्त होते हैं, क्योंकि उनकी सारी गतिविधियां खेती–किसानी से जुड़ी होती हैं। उनकी आजीविका पूरी तरह कृषि से प्राप्त संसाधनों पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार वे भूमिहीन मजदूरों से पूरी तरह अलग वर्ग हैं। कृषक अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि खेती के लिये प्राप्त जमीन और उसमें होने वाला उत्पादन बाजार की अर्थव्यवस्था से संबंध नहीं रखता। अधिकतर

किसान समाजों के भूमि पर पारम्परिक अधिकार होते हैं। और यह अधिकार पूरी तरह सुरक्षित होते हैं, परन्तु कुछ कृषक समाज ऐसे भी हैं जिनकी जमीनें पारिवारिक संरचना से बाहर चली जाती हैं। कृषक समाज में जमीन ही उत्पादन का स्रोत है। जमीन के हर टुकड़े की एक कीमत होती है जो किसानों की आजीविका सुनिश्चित करती हैं।

9.5.2 पारिवारिक श्रम

कृषक समाज की अर्थव्यवस्था की एक मौलिक विशेषता यह है कि यह पारिवारिक सदस्यों के श्रम पर निर्भर करती हैं और इसे पूंजीवादी समाज से अलग पहचान देती है। किसानों ने कृषि में उत्पादन के लिये परिवार श्रम की प्रथा को पारम्परिक रूप से अपनाया हुआ है। हर परिवार के सदस्य अपने उपयोग की चीजें पैदा करने के लिये अथवा अपनी आर्थिक समृद्धि के लिये खेतों में काम करते हैं। कभी–कभी ऐसे अवसर आते हैं जब किसानों को खेतों में काम करने के लिये बाहर से मजदूर बुलाने पड़ते हैं। ऐसा प्रायः फसल की कटाई के समय होता है। क्योंकि तैयार फसल को जल्दी से जल्दी खेतों में जाकर काटना जरूरी हो जाता है। और उस समय मानव संसाधन की ज्यादा जरूरत पड़ती हैं। व्यापारिक उद्देश्यों के लिये खेती करने के लिये भी मजदूरों की जरूरत होती है। लेकिन अपने जीवन निर्वाह तथा खाद्यान्न की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये की जाने वाली खेती में परिवार के सदस्य ही काम करते हैं।

9.5.3 पूंजी का संचयन

पूंजीवादी उत्पादन में पूंजी का संचयन और मांग प्राथमिक आवश्यकता होती है। यद्यपि लाभ के रूप में पूंजी की व्याख्या करने में घरेलू उत्पादन प्रणाली में अस्पष्टता रहती है, क्योंकि कृषक समाज खेतों में केवल अपना जीवन निर्वाह करने के लिए काम करते हैं उनका उद्देश्य व्यापारिक नहीं होता है (एलिस, 1988)। इस प्रकार लाभ के लिये खेती करने और जीवन निर्वाह के लिये खेती करने में मौलिक अंतर होता है। लाभ के लिये खेती पूंजीवादी समाज में की जाती है तथा जीवन निर्वाह के लिए खेती कृषक परिवारों द्वारा की जाती है (जिसकी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें परिवार के वे सदस्य काम करते हैं जिन्हें कृषि उत्पादों की आवश्यकता अपने उपभोग के लिए होती है)। परिवार दो उद्देश्यों के लिये खास तरह की पूंजी खरीदते हैं। जिसमें एक है – उत्पादन तथा दूसरा खपत। उत्पादन के उद्देश्य को पूरा करने के लिये खेतों में हल चलाना पड़ता है, सिंचाई के लिए जल पम्प लगाने पड़ते हैं तथा उत्पादित अनाज के शोधन के लिये मशीनें लगानी पड़ती हैं। खपत के उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। बैलगाड़ी आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। खेती किसानी में आमदनी की दर पहले से सुनिश्चित नहीं की जा सकती। इस आधार पर कृषक समाज को पूंजीवादी समाज से अलग पहचान दी जा सकती है।

9.5.4 जीवन निर्वाह/खपत के लिये उत्पादन

कृषक समाजों की एक और बड़ी विशेषता यह है कि उनकी निर्वाह प्रणाली दूसरों से भिन्न है। जीवन निर्वाह के लिये उत्पादन की मात्रा कृषि भूमि से प्राप्त की जाती है जिसकी खपत परिवार में होती है। किसान लाभ कमाने के लिये अपने उत्पादों को बाजारों में नहीं बेचते इसीलिये उन्हें जीवन निर्वाह करने वाले किसान कहा जाता है।

जमीन में पैदा होने वाले अतिरिक्त उत्पादों को वे प्रायः भविष्य के उपयोग के लिये सम्भाल कर रखना पंसद करते हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण बाजार की अर्थव्यवस्था में उनकी भागेदारी आंशिक ही रहती है, अर्थात अपने उत्पादन का बहुत छोटा हिस्सा ही किसान आवश्यकता पड़ने पर बाजार में बेचते हैं। वैश्विक स्तर पर देखें तो अपने खेतों में काम करने वाले परिवार के लोग बौद्धिक रूप से अधिक सक्षम होते हैं वे कृषि कौशल के अधिक जानकार होते हैं और अपने उपयोग के साथ–साथ व्यापारिक उद्देश्य के लिये भी अच्छी फसलें उगाते हैं। और कभी–कभी भारी मुनाफा भी कमाते हैं उन्हें किसान नहीं कहा जाता। वे व्यापार के लिये खेती करते हैं। कभी–कभी दो या दो से अधिक परिवार मिलकर सामूहिक खेती द्वारा अच्छा उत्पादन करते हैं और भारी मुनाफा कमाते हैं। एक जैसी वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय के लिए पारस्परिकता एक सांस्कृतिक विशेषता मानी जाती है। इस प्रक्रिया में जो विनिमय होता है वो बाजार की कीमत के अनुसार नहीं होता बल्कि इसके साथ सांस्कृतिक मूल्य अधिक जुड़े होते हैं।

9.6 किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था

प्रायः बाहरी संगठनों द्वारा किसानों का राजनैतिक शोषण होता है। इसके लिये किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था जिम्मेदार होती है। जहां व्यापक रूप से बाजार मूलक अर्थव्यवस्था का विस्तार हो जाता है वहां इसकी संभावना अधिक बढ़ जाती है। बाजार की राजनीति द्वारा किसानों के शोषण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसे शोषण तथा बाजार की राजनीति के सामने घुटने टेकने की व्यवस्था से बचने के लिये यह आवश्यक है कि किसान जागरूक हो और अपने हितों की सुरक्षा के लिये संघर्ष करें, न कि बाहरी दबावों के आगे समर्पण कर दें। इसलिये किसान बाजारों के साथ लम्बे समय तक चलने वाले आर्थिक सौदे नहीं करते अथवा यह कहें कि वे बाजारों की विचारधाराओं को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते। उनके उत्पादन के केन्द्र में अपने जीवन निर्वाह और आजीविका चलाना प्रमुख रूप से मौजूद रहता है। कृषक समाजों के नेता स्वार्थी प्रवृत्ति के होते हैं और वे अपने निहित स्वार्थों के लिये कृषक अर्थव्यवस्था में राजनैतिक मामले शामिल कर देते हैं। आमतौर पर किसानों की राजनैतिक प्रकृति उनके परिवारों में राजनैतिक विभाजय से तय होती है। यद्यपि ग्रामीण किसान पारिवारिक स्तर पर एकता के सूत्र से मजबूती से बंधे होते हैं। वंशानुगत सामाजिक संरचना में किसान समाज के बीच जमींदार तथा संपन्न किसान ऊँचे स्थान पा जाते हैं और वे पूरे कृषक समाज पर अपना प्रभुत्व जमाने के प्रयास करते रहते हैं। गरीब और भूमिहीन किसान उनके प्रभाव से नहीं बच पाते क्योंकि इनमें आपसी एकता का अभाव रहता है। उसकी एक वजह यह होती है कि वे अपने निहित स्वार्थों के कारण जमींदार के नियंत्रण में रहते हैं और अपने निहित स्वार्थों के कारण जमींदार उन्हें एक नहीं होने देते। किसानों की वंशागुण संरचना में जिन लोगों की केन्द्रीय भूमिका होती है वे किसानों की अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे किसान आंदोलनों का सहारा लेते हैं।

राजनैतिक अर्थव्यवस्था का मत संसाधनों पर नियंत्रण से जुड़ा होता है और संसाधनों पर नियंत्रण के कारण कृषि भूमि के पुनर्वितरण की बात अक्सर उठाई जाती रही हैं। जब भूमि पर किसानों के अधिकारों की बात उठती है तो कृषि भूमि पर मालिकाना हकों के संपूर्ण और अंतिम विभाजन की बात अंतिम रूप नहीं ले पाती। भूमि पर

किसानों का हक पारम्परिक अधिकारों के आधार पर तय किया जाता है अर्थात पारम्परिक से जो भूस्वामी है उनकी जमीन पर उन्हीं का हक रहेगा परन्तु जमीन के इस्तेमाल और वैधानिक रूप से भूमि के स्वामित्व को लेकर समूचे किसान समाज में भू–स्वामियों के बीच बात उठती रहती है कि जमीन पर मालिकाना हक केवल उन्हीं का रहना चाहिए जिनका पारंपरिक रूप से है या खेतों में काम करने वाले उन लोगों को भी मिलना चाहिए जो खेती किसान के सारे काम करते परन्तु फिर भी भूमिहीन हैं। कृषक समाजों में शक्ति आधारित सम्बंधों बनाम राजनैतिक संगठन कृषक अर्थव्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। फिर भी स्वामित्व चाहे जिस तरह का हो, भूमि तथा शक्ति परस्पर निर्भर है अर्थात् शक्ति जमीन से प्राप्त होती है तथा जमीन को ताकत में परिवर्तित किया जा सकता है।

शोषण के शिकार केवल किसान ही नहीं हैं, किसानों का शोषण केवल बड़े भूस्वामियों द्वारा ही नहीं किया जाता है, अन्य घटक भी है जो किसानों का शोषण करते हैं, जैसे बिचौलिए या दलाल जो कृषि उत्पादन की राजनैतिक अर्थव्यवस्था में बिचौलियों की भूमिका निभाते हैं। ये बिचौलिए शक्तिशाली तथा कमजोर वर्गों के बीच में खड़े हो जाते हैं और शक्तिशाली समूहों से मिलकर कमजोर किसानों का शोषण करते हैं।

गतिविधि 2

तुमने पढ़ा होगा या समाचारों में सुना होगा कि भारत सरकार ने कृषि सम्बंधी तीन कानून पास किए हैं। भारत के सभी भागों से आये प्रमुख किसानों ने इन कानूनों का विरोध किया है। इसके विरोध में जो किसान आंदोलन हो रहा है, उसे केंद्र में रखते हुए 2 पृष्ठों का एक आलेख तैयार कीजिए जिसमें नगरीय क्षेत्र के घेराव तथा कृषक अर्थव्यवस्था का वर्णन हो तथा जो लोग इस आंदोलन में शामिल है, उनकी भूमिका का विश्लेषण कीजिए। अपने अध्ययन केंद्र पर मित्रों के साथ इस पर चर्चा कीजिए।

9.7 किसान आंदोलन

भारत में किसान आंदोलनों का सिलसिला 19वीं शताब्दी में पूर्वी बंगाल में हुए किसान आंदोलन से देखा जा सकता है। जब जमींदारों ने किसानों से जमीनें छीनने के लिए शक्ति का इस्तेमाल करते हुए उनका शोषण करना शुरू कर दिया था। तब किसानों ने एक जुट होकर इस शोषण का विरोध किया। विरोध करने के लिए किसान एकत्रित हुए और उन्होंने उन जमीनों पर जिनसे उन्हें बलपूर्वक हटाया जा रहा था, अपनी मालिकाना हक की मांग उठाई और जोरदार आंदोलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप 1885 में भूमि किरायेदार अधिनियम बना। अब तक भारत में हुए किसान आंदोलनों को तीन चरणों में देखा जा सकता है। पहला चरण – 1857 से 1921 तक – इस दौरान आंदोलन की गति धीमी रहीं क्योंकि किसानों को सुव्यवस्थित नेतृत्व नहीं मिल पाया था। दूसरा चरण – 1923 से 1946 तक – इस दौरान किसान एक प्रबल वर्ग के रूप में उभर कर आये और उन्होंने किसानों की समस्याओं को ऊँची आवाज में व्यवस्थित ढंग से उठाया। तीसरा चरण – आजादी के बाद का दौर – स्वतंत्र भारत की सरकार जब किसानों की समस्याओं के सही समाधान तलाशने में असमर्थ रही तो किसान आंदोलन में उतरे – इन तीनों चरणों के किसान आंदोलनों पर विस्तार से विचार किया जायेगा।

9.7.1 प्रथम चरण 1857–1921

अंग्रेजों ने किसानों के शोषण तथा लगान में वृद्धि की। इससे देश के लोगों में ब्रिटिश सरकार के प्रति गुस्सा भड़क उठा। इसी दौर में बार–बार देश को भूखमरी का सामना करना पड़ा, देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। इससे किसान आंदोलन पर उतर आए। इस चरण में देश भर में कई महत्वपूर्ण आंदोलन हुए – जिनमें संथाल आदिवासियों का अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह, दक्षिण भारत में दंगे, बंगाल में किसानों का विद्रोह, अवध बगावत, पंजाब संघर्ष आदि। इस चरण के उत्तरार्ध में दो अन्य महत्वपूर्ण आंदोलन हुए जिनका नेतृत्व भारत के महान नेता महात्मा गांधी ने किया। ये थे – बिहार में चम्पारण आंदोलन तथा खेड़ा के किसानों का सत्याग्रह आंदोलन। यद्यपि इन दोनों आंदोलनों से पहले, कांग्रेस की नीतियां जमींदारों के हितों के संरक्षण के अनुकूल थीं। परन्तु इन दोनों आंदोलनों के दौरान अंग्रेजों द्वारा लगाये गये भारी लगान के विरुद्ध किसानों में विद्रोह की चिनगारी भड़क उठी। अब उनका निशाना उनके शोषण के लिए जिम्मेदार जमींदार नहीं थे।

9.7.2 द्वितीय चरण 1923–1946

जब कांग्रेस पूंजीपतियों के हितों के संरक्षण में जुटी थी, किसानों को यह बात बुरी लगी कि कांग्रेस उनके साथ खड़ी होने के स्थान पर शोषक वर्ग पूंजीपतियों के साथ खड़ी होने के स्थान पर शोषक वर्ग पूंजीपतियों के साथ खड़ी है। इससे किसानों ने अपने बीच से ही किसान नेता चुने और वे किसानों के शोषण के विरुद्ध किसानों के आंदोलन की अगुवाई करने लगे। अपने हितों के लिए किसान वर्ग संघर्ष पर उतारू हो गये। पूरे देश में किसान संगठन बने और वे किसान आंदोलन से जुड़े गये। 1935 में किसानों की इच्छाओं और आवश्यकतों को केंद्र रखते हुए अखिल भारतीय किसान सभा बुलाई गई। उन दिनों भारत में मौजूद समाजवादी दल तथा साम्यवादी दल ने किसानों का समर्थन किया। किसानों पर जो तरह–तरह के दबाव बनाये गये थे उनके विरोध में देश के विभिन्न भागों में किसान सभा ने विद्रोह किया और किसानों की समस्याओं को उठाया। आंधप्रेदश में निपटान विरोधी आंदोलन (Anti-Settlement Agitation), बिहार जमींदारी उन्मूलन आंदोलन (Abolition of Zamidari System), दक्षिण भारत में अन्यायपूर्ण वन–कानून के विरुद्ध विद्रोह, तथा भारत के अनेक राज्यों में जमींदारों के विरुद्ध आंदोलन। इन आंदोलनों ने सत्तारूढ़ दल तथा कांग्रेस पर इतना दबाव बनाया कि कृषि योजना का गठन करना पड़ा। इसके अलावा कांग्रेस किसानों की मांगें पूरी नहीं कर सकी और किसानों का असंतोष दूर नहीं हुआ। क्योंकि जमींदारों का कांग्रेस पर बहुत दबाव था।

9.7.3 आजादी के बाद का चरण

1947 में भारत को आजादी मिलने के बाद भी, सरकार किसानों की समस्याओं का समाधान तलाशने में असमर्थ रही। फिर भी कांग्रेस कृषि क्षेत्र के पूंजीपतियों को विश्वास में लेने में सफल रही, उन्होंने किसानों को अपने आंदोलन को और बढ़ाने के लिए उकसाया। आजादी के बाद बनी कृषि–नीतियों ने संघर्षरत किसानों को कोई लाभ नहीं पहुंचाया। इससे किसानों की तकलीफें और बढ़ गई। परिणामस्वरूप पूरे देश में किसानों के अनेक आंदोलन हुए जैसे, नील आंदोलन (Indigo Movement), मोपला आंदोलन (Moplah Revolt), तेभागा आंदोलन (Tebhaga Movement), तेलंगाना आंदोलन (Telangana Movement) आदि। आंध्र प्रदेश में कांग्रेस ने आंध्र

प्रांतीय किसान सभा ने आंदोलन रोकने के प्रयास किये, परन्तु वह असफल रही। क्योंकि यह किसान सभा जमींदारों के इशारों पर काम कर रही थी। परन्तु साम्यवादी दल गरीब किसानों और मजदूरों के हितों के समर्थन में जुटा। परन्तु धरातलीय स्तर पर किसानों के हितों संरक्षण के लड़ने वाली की संख्या बहुत कम थी।

बोध प्रश्न 2

1) वे तीन आयाम कौन–कौन से हैं जो किसानों की अर्थव्यवस्था तथा जीवन पद्धतियों को समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) किसानों की आजीविका के मूलभूत स्रोत क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) पारिवारिक श्रम से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) किसान परिवार दो उद्देश्यों से पूंजी की खरीदारी करते हैं। नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) आजादी के बाद भारत में भड़के चार महत्वपूर्ण आंदोलनों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने किसानों की सामान्य धारणाओं का वर्णन किया तथा उनकी आर्थिक प्रणालियों की व्याख्या की। हमने किसानों की उन संरचनाओं का वर्णन किया जो भारत में पाई जाती हैं। कृषक समाज को अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति दोनों के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस अध्याय में कृषक समाज के विविध पक्षों पर भी प्रकाश डाला गया जिनसे पता लगता है कि भारत की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति में कृषक समाज किस तरह शामिल है। इसमें किसानों की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का भी वर्णन किया गया तथा कृषक अर्थव्यवस्था का राजनैतिक पहलू क्या है। इस इकाई में भारत में विभिन्न काल खंडों में हुए किसान आंदोलनों की भी चर्चा की गई जिन्हें तीन चरणों में विभाजित किया गया है।

इस प्रकार इस अध्याय में किसानों की अर्थव्यवस्था के लगभग सभी प्रमुख पक्षों पर सिलसिलेवार विचार किया गया है।

9.9 संदर्भ

ए.वी. चेनोव (1966). *द थ्यौरी ऑफ पीजेंट इकोलॉमी.* द अमेरिकन इकोलॉगिक एसोसिएशन।

डी. एन. धनाग्रे (1983). *पीजेंट मूवमेंट इन इंडिया 1920–1950.* ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस।

एफ. ईलिस (1988). *पीजेंट इकोनॉमिक्स.* ब्रिटेनः केम्ब्रज यूनीवर्सिटी प्रैस।

ए. क्रोएबर (1948). एन्थ्रोपोलॉजी. न्यूयार्कः हरकोर्ट।

सी. जेम्स स्कॉट (1976). *द मोरल इकोनॉमी ऑफ द पीजेंटः रिवेलियन एण्ड सबसिस्टेन्स इन साउथ ईस्ट एशिया.* येल यूनीवर्सिटी प्रैस।

ए. एन. सेठ (1984). *पीजेन्ट ऑर्गेनाइजेशन इन इण्डिया.* : दिल्लीः बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन।

डी. थॉर्नर (1966). *चैनोवस कन्सेप्ट ऑफ पीजेंट इकोनॉमी.* इन डी. फोर्नर एट. एल. (एडस, ए. बी. चेनल ऑन द थ्योरी ऑफ पीजेंन्ट इकोनॉमी, (xi-xxiii), आई.एल. होमबूड : द अमेरिकन इकोनॉमिक एसोशियेशन।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) किसान एक व्यक्ति होता है अथवा एक समरूप समूह होता है जो खेतों में काम करता है, विशेषरूप से जो अपनी आजीविका के लिये कृषि कार्यों में संलग्न रहता है।

2) घरेलू

3) मालिक, किसान और मजदूर

4) गलत

5) समरूप

बोध प्रश्न 2

1) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक आयाम

2) भूमि

3) परिवार श्रम का अर्थ है वह श्रम जिसमें परिवार के सदस्य उत्पादन प्रक्रिया के दौरान अपनी ऊर्जा खर्च करते हैं।

4) वे दो उद्देश्य जिनके लिये परिवार पूंजी की खरीदारी करते हैं, – उत्पादन और खपत।

5) नील आन्दोलन, मोपला आन्दोलन, तेभागा आन्दोलन तथा तेलगाना आन्दोलन।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 पूंजीवाद*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पूंजीवाद की मूलवर्ती धारणायें

10.3 पूंजीवाद के आयाम

10.3.1 निजी सम्पत्ति स्वामित्व

10.3.2 निजी स्वार्थ

10.3.3 प्रतियोगिता

10.3.4 मूल्य तंत्र

10.4 श्रम विभाजन तथा श्रम उत्पादन

10.4.1 ज्ञान की वृद्धि

10.4.2 कौशल विकास

10.4.3 सीखकर उत्पादन की क्षमता में वृद्धि करना

10.4.4 उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों का इस्तेमाल

10.5 पूंजीवाद व्यवस्था में आर्थिक असमानता

10.6 पूंजीवाद के विभिन्न रूप

10.6.1 निजी पूंजीवाद

10.6.2 राज्य–पूंजीवाद

10.6.3 मिश्रित पूंजीवाद

10.7 सारांश

10.8 संदर्भ

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- पूंजीवाद की मूलवर्ती धारणाओं के बारे में;
- पूंजीवाद के विभिन्न तत्वों के बारे में;
- श्रम किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है तथा श्रम विभाजन की प्रक्रिया के बारे में;
- आर्थिक असमानता के विचार के बारे में;
- पूंजीवाद के विभिन्न प्रकारों के तुलनात्मक अध्ययन के बारे में।

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित है।

10.1 प्रस्तावना

इकाई नौ में आपने किसानों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति के बारे में पढ़ा। इस इकाई में पूंजीवाद पर विचार किया जायेगा तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के बारे में बताया जायेगा। भारत में तथा दुनिया के अन्य देशों में पूंजीवादी धारणा को समझाने का प्रयास किया जायेगा। इस इकाई में पूंजीवाद के विविध आयामों की व्याख्या की जायेगी। पूंजीवाद की एक मूलवर्ती विशेषता एक श्रम विभाजन है। इस इकाई में श्रम विभाजन तथा श्रम के उत्पादन के बारे में भी बताया जायेगा। श्रम विभाजन में शामिल विभिन्न घटकों की व्याख्या की जायेगी। पूंजीवाद समाज के लोगों में असमानता का आधार है और यह विभिन्न रूपों में विद्यमान रहता है। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन कौन करता है और उस पर नियंत्रण कौन करता है। इस इकाई में पूंजीवाद के तीन महत्वपूर्ण रूपों का वर्णन किया गया है।

10.2 पूंजीवाद की मूलवर्ती धारणायें

पूंजीवाद एक आर्थिक प्रणाली का एक रूप है। इसमें तीन चीजें शामिल होती हैं, अ) श्रम (वेतन के आधार पर काम करना), ब) संसाधनों का निजी स्वामित्व (जैसे कृषि भूमि, मशीनें कार्यालय आदि), स) विनिमय तथा लाभ कमाने के लिये वस्तुओं का उत्पादन समाज में ऐसे लोगों का एक वर्ग होता है जो उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं, इन्हें पूंजीपति कहा अथवा बुर्जुआ कहा जाता है। दूसरी ओर वे लोग होते हैं जो वेतन के बदले अपना श्रम बेचते हैं। वे श्रमिक वर्ग के लोग होते हैं जो वेतन के बदले अपना श्रम बेचते हैं। वे श्रमिक वर्ग के लोग होते हैं – उन्हें 'सर्वहारा' कहा जाता है। 'बुर्जुआ' और 'सर्वहारा' का यह वर्गीकरण कार्ल मार्क्स की देन है। पूंजीवाद की प्रमुख विशेषता लाभ कमाना है। पूंजीवाद का उद्देश्य और अधिक पूंजी अर्जित करने के लिए पूंजी का निवेश करना है। धन कमाने का यह तरीका पूंजीवाद के केंद्र में अवस्थित है (स्यूंपीटर व स्वीडबर्ग, 1991 {1918})। उदाहरण के लिए जब कोई मालिक अधिक मजदूरों को काम पर लगाता है तब उसका उद्देश्य अधिक मुनाफा कमाना होता है। मालिक को लाभ की प्राप्ति धन के रूप में होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि निवेश किया हुआ धन और अधिक धन पैदा करता है। अर्थात धन पूंजी के रूप में कार्य करता है। यदि अर्थव्यवस्था के विस्तार के लिये और अधिक धन लगाया जाता है तो इसे पूंजी 'संचयन' कहा जाता है (मार्क्स, 1974)।

परन्तु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि धन के विनिमय से अधिक धन की उत्पत्ति होती है। मुनाफे की धन की रूप में प्राप्ति उत्पादन पर निर्भर करती है। जितना अधिक उत्पादन होगा उतना ही अधिक मुनाफा होगा (अधिकतर धन के रूप में) इस प्रकार इस प्रक्रिया में जो विनिमय होता है वह पैसे के बदले उत्पादों का होता है, तथा काम करने की क्षमता और उत्पादन की क्षमता पूंजी के संचयन के लिये अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण है। यहां यह समझ लेना जरूरी है कि धन को और अधिक धन में बदल देना कोई जादू का खेल नहीं है, इस पूरी प्रक्रिया में पर्याप्त रूप से श्रम की आवश्यकता पड़ती है। श्रम और धन के बीच में सदैव एक द्विविधा रहती है। पूंजीपति मजदूर को काम पर लगाता है तो उसे कम से कम मजदूरी देना चाहता है और अधिक से अधिक घंटों तक काम लेना चाहता है। और उन पर यह दबाव बनाता है कि वे तेज गति से काम करें। मजदूर कोशिश करता है कि जैसा पूंजीपति चाहता है वैसा गुप्त रूप से या स्पष्ट प्रकरण वह न करें। मालिक काम के बीच में एक बार

छुट्टी देता है जिससे मजदूर अपास में थोड़ी देर बातें कर सकें। मजदूरों की बातों में ज्यादातर यही विषय रहता है कि जल्दी से जल्दी काम का समय खत्म हो और वे विश्राम पर जायें। ऐसी बातें मजदूर पूंजीपतियों की अनुपस्थिति में करते हैं और काम रोक देते हैं। उनका काम रोक देना विरोध का प्रतीक होता है इससे मजदूर वर्ग और गैर मजदूर वर्ग के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है – 'इसे वर्ग संघर्ष कहा जाता है'। वर्ग संघर्ष की स्थिति में उत्पादन के स्वामी मजदूर वर्ग पर दवाब बनाते हैं। इस संघर्ष में मजदूर वर्ग मालिकों के दवाब के विरुद्ध प्रदर्शन करते हैं। मालिकों के मजदूरों पर दवाब को मजदूरों का उत्पीड़न कहा जाता है। (स्मैलसर तथा स्वेदबर्ग, 1994) वर्ग संघर्ष की धारणा कार्ल मार्क्स के वर्गीय समाज के सिद्धांत से ली गई है। मार्क्स के शब्दों में यह संघर्ष सर्वहारा और बुर्जुआ वगों के बीच होता है। इस वर्गीकरण में बुर्जुआ ताकतवर वर्ग होता है और श्रमिक वर्ग या सर्वहारा वर्ग कमजोर होता है।

10.3 पूंजीवाद के आयाम

पूंजीवाद की संपूर्ण विचारधारा नीचे दिये गये आयामों में अपनी जड़ें रखती है –

10.3.1 निजी संपत्ति स्वामित्व

संपत्ति का अर्थ केवल मूर्त वस्तुओं का स्वामित्व नहीं है, परन्तु संपत्ति पर भी व्यक्ति की जीवन का अधिकार तथा स्वतंत्रता का अधिकार होता है। साथ ही साथ निजी सम्पत्ति का स्वामित्व का एक रूप यह भी है श्रमिक वर्ग का भी उन वस्तुओं पर अधिकार हो जिन्हें वे अपने परिश्रम से बनाते हैं। निजी सम्पत्ति होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह केवल एक व्यक्ति की संपत्ति है। यह एक व्यक्ति की संपत्ति भी हो सकती है और व्यक्तियों के समूह की संपत्ति भी हो सकती है। निजी संपत्ति का विचार मात्र पूंजीवाद से सम्बंधित नहीं है। परन्तु पूंजीवादी भूमिका के लिए यह एक आवश्यक घटक है। निजी सम्पत्ति का अधिकार औद्योगिक समाजों को और अधिक उन्नत करता है, पारस्परिकता सुनिश्चित करता है। तथा विश्वास व ईमानदारी पर जोर देता है। लोग उन वस्तुओं के कारण अधिक मूल्यवान हो जाते हैं जो उनके पास होती हैं। वस्तुएं निजी स्वामित्व वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए तथा बड़े समाज के लिए सर्वोत्तम चाहत का विषय हैं जिनके पास वे होती है।

10.3.2 निजी स्वार्थ

पूंजीवाद को बढ़ावा देने वाली चीजों में सबसे जरूरी चीज निजी स्वार्थ है। निजी स्वार्थ का अर्थ है कि सभी लोग अपने–अपने स्वार्थों के लिये, लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा महत्वाकांक्षाओं के लिये काम करते हैं इसका यह अर्थ ना समझा जाय कि पूंजीवाद स्वार्थपरता और लोभ लालच को बढ़ावा देता है। रुचियां तथा लालच दो अलग–अलग चीजें नहीं हैं। लालच में अपनी रुचियां अपना लाभ शामिल है। जो हमें अच्छा लगता है उसकी चिन्ता करना या उसे प्राप्त करने का प्रयास करना लालच के दायरे में आता है और जब हम अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं तो दूसरों के स्वार्थों की उपेक्षा स्वतः ही हो जाती है। इसमें किसी तरह का कोई वैधानिक प्रावधान शामिल नहीं है। निजी स्वार्थ मनुष्यों की वंशानुगत विशेषता है और यह भी सच है कि निजी स्वार्थ की पूर्ति के बिना जीवन चलाना संभव नहीं है। पूंजीवाद में निजी स्वार्थ का इस्तेमाल होता है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पूंजीवाद से प्रभावित लोग केवल

अपने लाभ के पीछे ही भागते हैं, परन्तु सच यह है कि उनके अपने लाभ में उनके परिवारों का तथा जिन्हें वे प्यार करते हैं उनका लाभ भी अन्तर्निहित है। इतना ही नहीं लोग अपने हिस्से में आने वाले लाभ को दूसरों के साथ भी बांटते हैं, और कभी–कभी तो वे स्वयं को प्राप्त हुए लाभ को सभी सहकर्मियों में बाँटना पसंद करते हैं। यह सहकर्मी प्रायः वे लोग होते हैं जो उनके अपने समूह से संबंध रखते हैं।

गतिविधि 1

अपने पड़ोस के किसी पुस्तकालय में जाइये और आइन रैंड की किताब ''दं फाउन्टेन हैड'' पढ़िये, इस पुस्तक को पढ़ने के बाद इसमें वर्णित लेखक के विचारों पर केंद्रित एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

इस निबन्ध में बताइये कि पूंजीवादी समाज में इसकी क्या सार्थकता है।

अपने अध्ययन केंद्र में जाकर अपने निबन्ध पर अपने शैक्षिक सलाहकारों तथा दोस्तों के साथ चर्चा कीजिये।

10.3.3 प्रतियोगिता

प्रतियोगिता अथवा प्रतिस्पर्धा पूंजीवाद का एक महत्वपूर्ण तत्व हैं। पूंजीवाद के समर्थक प्रतिस्पर्धा के बारे में बहुत कम ज्ञान रखते हैं। प्रतिस्पर्धा एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जो आगे बढ़ाती है, स्थिरता प्रदान करती है और नवीनता लाती है। इन्हें प्रतिस्पर्धा के सबसे बड़े लाभों के रूप में देखा जाता है। पूंजी संचयन के लिये भी प्रतिस्पर्धा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। स्वतंत्र बाजार में उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्धा विरोधियों की तुलना में सर्वोत्तम सेवायें प्रदान करने के लिये लागू की जाती है। विरोधी शत्रु नहीं होते, परन्तु प्रतिस्पर्धा की आधार उत्पादन तथा उपभोक्ताओं को मिलने वाला महत्व होता है। प्रतियोगी के केन्द्र में प्रतिस्पार्धियों का मूल्य पर नवीनता पर, मौलिकता, गुणवत्ता, मात्रा तथा पद्धतियों आदि पर ध्यान अधिक केंद्रित रहता है। प्रतिस्पर्धा आर्थिक रूप से जीतने के विचार को केन्द्र में रखते हुए काम करता है, अन्य चीजों पर उसका ध्यान कम रहता है। प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा के केन्द्र में उत्पादक से अधिक से अधिक उत्पान कराना, उत्पादन के स्तर में इस तरह वृद्धि करना कि उसकी गुणवत्ता बनी रहे और उचित मूल्य के बदले ग्राहक को अच्छी गुणवत्ता वाली चीजें प्राप्त हो सकें।

10.3.4 मूल्य तंत्र

मूल्य तंत्र वह प्रणाली है जिसके आधार पर चीजों की कीमतें मांग और पूर्ति के अनुसार तय की जाती है। मूल्य तंत्र पूरी तरह उत्पादक और उपभोक्ता के हितों को केंद्र में रखकर काम करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मूल्य तंत्र उत्पादों के ग्राहक और उत्पादों के विक्रेता दोनों के संतोष पर निर्भर करता है। मूल्य तंत्र के काम करने का आधार स्वतंत्र बाजार होता है, जिसमें बदलती कीमतों के आधार पर उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा तय की जाती है। परंतु कभी–कभी खरीदार तथा विक्रेता के अलावा सरकार भी बाजार को नियंत्रित करती है। जिससे गरीबों को उचित मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त हो सके। स्वतंत्र बाजार में यदि चीजें कम उपलब्ध होती हैं तो उनकी मांग और अधिक बढ़ जाती है, जबकि वस्तुओं की पूर्ति में कमी आ जाती है। ऐसी स्थितियों में चीजों की कीमतें बढ़ जाती हैं। जिन चीजों की

कीमतें अधिक बढ़ जाती हैं, उनकी मांग फिर गिरने लगती है। और संसाधनों के संरक्षण को बढ़ावा मिलने लगता है। बदलती कीमतें उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों को एक दूसरे के विपरीत और बाजार से बाहर निकल जाए, और निर्माता से कहती है कि वह बाजार में अपने उत्पाद उतारे जहां उत्पादकों के बीच प्रतिस्पर्धा की स्थिति है। दूसरी आरे कीमत में गिरावट उपभोक्ता को बाजार में जाकर खरीदारी करने के लिए प्रेरित करती है तथा उत्पादकों को हतोत्साहित करती है कि वे बाजार से बाहर निकल आएं।

10.4 श्रम विभाजन और श्रम उत्पादन

श्रम विभाजन श्रमिक के कार्य का कौशल के आधार पर बंटबारा करता है। लोग उन उत्पादों पर निर्भर करते हैं जो उन तक पहुँचाई जाती हैं। ये उत्पाद उनके जीवन चलाने तथा हित साधने के लिए जरूरी हैं। इन वस्तुओं का उत्पादन श्रम–शक्ति पर निर्भर करता है, जो श्रमिकों के बीच कौशल के आधार पर विभाजित की जाती है। श्रम विभाजन से उत्पादन में वृद्धि होती है और कौशल तथा अर्जित जानकारी से श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। उत्पादन की प्रक्रिया से भी श्रमिक का ज्ञान बढ़ता है और वह श्रमिक को विशेषज्ञ तथा अर्ध–विशेषज्ञ बनाती है। श्रम विभाजन से श्रमिक अनेक प्रकार की कार्यों को करने के लिए अपने श्रम का उपयोग करते हैं। इसका वर्णन आगे किया गया है।

10.4.1 ज्ञान की वृद्धि

उत्पादन की प्रक्रिया जानकारी का स्तर बढ़ाती है। यह श्रमिक के कौशल पर निर्भर करता है। जैसे अनेक उत्पादों को तैयार करने के तरीके, औद्योगिक श्रमिकों तथा गैर–औद्योगिक मजदूर विभिन्न मामलों की विशेष जानकारी रखते हैं। मजदूर उद्योगों में उत्पादन के लिए एक हो जाते हैं। श्रम ज्ञान में वृद्धि करता है, इसका एक सामान्य उदाहरण सब्जियों के उत्पादन में ज्ञान की वृद्धि होना है। सब्जियां उगाने के लिए किसान अनेक लोगों का सहयोग लेते हैं। वे खेत में हल चलाने वाले, खुदाई करने वाले, सिंचाई की व्यवस्था के लिए जल पम्प लगाने, अधिक उत्पादन के लिए उर्वरकों का इस्तेमाल करने, फसल काटने के लिए अतिरिक्त लोगो की जरूरत आदि। सब्जी उगाने की प्रक्रिया में अनेक लोगों का योगदान होता है, अपने–अपने कामों के जानकार लोग अपनी सेवाएं देते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन के लिए जितनी जानकारी एक व्यक्ति या उसके परिवार जनों को होती है, उससे कहीं ज्यादा जानकारी की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक समाजों में ज्ञान अन्य माध्यमों से भी प्राप्त किया जा सकता है – विभिन्न कार्यों को करने के लिए अधिक सक्षम यांत्रिक साधन उपलब्ध हैं जो फसल उत्पादन में अनेक कार्यों को एक साथ कर सकते हैं – जैसे ट्रेक्टर, रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल आदि।

10.4.2 कौशल विकास

श्रम विभाजन से कौशल में वृद्धि होती है। विशेष रूप से जानकार तथा व्यावसायिक श्रमिकों के साथ काम करने से अन्य श्रमिकों भी कौशल की वृद्धि हो जाती है, श्रम विभाजन की कमी वाले आर्थिक समाज में श्रमिकों को मौका दिया जाता है कि वे कौशल प्राप्त श्रमिकों के साथ काम करें। ऐसा करने से कम कौशल युक्त श्रमिक कौशल के अधिक जानकार श्रमिकों से उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद तैयार करना सीख

जाते हैं। इसके ठीक विरुद्ध श्रम विभाजन यह सुनिश्चित करता है कि कौशल युक्त तथा अधिक जानकार व सक्षम लोग अपने समय का निवेश कौशल रहित मजदूरों को दिशा निर्देश देने में करते हैं जिससे बेहतर उत्पादन संभव हो सके। इससे काम पर लगे हर व्यक्ति उत्पादन दर में वृद्धि होती है।

इस प्रकार श्रम विभाजन केवल गैर–जानकर श्रमिकों में जानकारी की वृद्धि ही नहीं करता, अपितु साथ ही साथ कौशल युक्त श्रमिकों के माध्यम से कोई आर्थिक–समाज अपने उत्पादन के गुणवत्ता वाला उत्पादन दे सकते हैं। अगली पीढ़ियों के व्यक्तियों को पिछली पीढ़ी के अनुभवी लोगों से सीखकर काम करते से भी उत्पादन प्रक्रिया में धीरे–धीरे वृद्धि की जा सकती है।

10.4.3 सीखकर उत्पादन की क्षमता में वृद्धि करना

श्रम विभाजन से श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ जाती है। वे अन्य अति कुशल श्रमिकों से काम करते–करते सीखते भी रहते हैं। जो कुछ खास कामों को करने में कुशलता हासिल कर लेते हैं, वे अपने हुनर को उत्पादन के लिए इस्तेमाल करते हैं। बार–बार हुनर की इस्तेमाल करते हुए काम करने से वे श्रमिक भी कार्य–कुशल हो जाते है, जो पहले कुशल नहीं थे। अनुभव उन्हें इतना जानकर बना देता है कि वे ज्ञानी के रूप में चर्चित हो जाते हैं। इस प्रकार करते–करते सीखने की प्रक्रिया जिन उत्पादन केंद्रों पर जारी रहती हैं, वहीं श्रमिकों को अक्सर सिखाना नहीं पड़ता और उत्पादन पर सीधा ध्यान रहते से उत्पादन दर में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार जानकारियां दक्ष श्रमिकों से कम जानकर श्रमिकों को प्राप्त होती रहती हैं और जानकारियों का हस्तांतरण होता रहता है। इस प्रकार श्रम विभाजन द्वारा ज्ञान की वृद्धि भी होती चलती है और उद्यम केंद्र में अधिक उत्पादन भी होता रहता है।

10.4.4 उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों का इस्तेमाल

श्रम विभाजन से उत्पादन में मशीनों का इस्तेमाल भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, श्रम विभाजन से श्रमिकों के कौशल संबंधी ज्ञान में वृद्धि होती है। इसका अर्थ यह है कि श्रम–विभाजन उन श्रमिकों के ज्ञान में भी वृद्धि करता है जो उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों का इस्तेमाल करते हैं। अर्थात् मशीनों का इस्तेमाल करने के लिए श्रम विभाजन जरूरी है। इससे उत्पादन बहुत बढ़ जाता है और उद्यम की आर्थिक स्थिति में उछाल आ जाता हैं (मिश्रा, 1988)। यदि श्रम विभाजन की प्रक्रिया न अपनाई जाय और मशीनों का इस्तेमाल न किया जाय तो केवल मजदूरों को काम पर लगाने से उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी। मजदूरों के साथ–साथ उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों का इस्तेमाल करने से अधिक धन कमाया जा सकता है क्योंकि श्रमिकों को वेतन भी देना पड़ता है और शारीरिक श्रम से उतना उत्पादन संभव नहीं जितना मशीनों के इस्तेमाल से किया जा सकता है। उत्पादन के लिए मशीनों का इस्तेमाल करने से उत्पादकों को श्रमिकों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, केवल मशीन संचालन के जानकार श्रमिकों को काम पर लगाने से ही प्रतिदिन भारी उत्पादन किया जा सकता है। श्रमिकों को उनकी योग्यताओं, जानकारियों और अनुभवों के आधार पर काम सौंपने से और मशीनों के इस्तेमाल से उत्पादन में मनचाही वृद्धि की जा सकती है।

बोध प्रश्न 1

1) पूंजीपति की परिभाषा बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पूंजीवाद के तीन मौलिक तत्व क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) मूल्य तंत्र या मूल्य प्रणाली किस कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) श्रम–विभाजन का अर्थ है – पूंजीवादी समाज में उत्पादन उद्यमों के मालिकों का विभाजन। सत्य (√) / असत्य (×)

5) श्रम–विभाजन कुछ महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाता है। उनमें से किन्हीं दो के नाम बताइए।

.....

.....

.....

10.5 पूंजीवादी व्यवस्था में आर्थिक असमानता

मनुष्यों में असमानता तब से ही देखने को मिल रही हैं जब से मनुष्यों ने बचत के लिए अतिरिक्त उत्पादन की प्रक्रिया आरम्भ की थी। असमानता मानव–समाजों की अखंडता के लिए चुनौती है। इससे कुछ शक्तिशाली और कुछ कमजोर बनकर रह जाती हैं। अर्थ की शक्ति मनुष्य को बड़ा बना देती है और आर्थिक कमजोरी मनुष्य का कद छोटा कर देती है। जिस तरह का अंतर लैंगिक आधार पर देखने को मिलता है, वैसा ही धनी और निर्धन के बीच दिखने लगता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था असमानताओं की जननी है। उत्पादन के संसाधनों पर स्वामित्व रखने वालों और

श्रमिकों (उत्पादन इकाइयों में काम करने वाले कर्मचारियों) के बीच जो विभाजन या अंतर होता है, उसी में असमानता की जड़ें और गहरी होती चली जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में असमानता दो स्तरों पर निवास करती है – धन की असमानता और आय की असमानता।

कुछ विद्वान इस तरह की असमानताओं को संचयी असमानता तथा प्रवाहमान असमानता कहते हैं। ये असमानताएं विभिन्न स्तरों पर उत्पादन प्रणाली से जुड़े लोगों के बीच मौजूद रहती हैं – जैसे श्रमिक तथा मालिक या सभी कर्मचारी तथा विभिन्न प्राकर के उत्पादन स्वामी पूंजीवादी समाज में कर्मचारी वर्ग में मजूदरों की संख्या सबसे ज्यादा होती है।

उनकी श्रम शक्ति समुची उत्पादन संपत्ति का आधार होती है श्रमिकों तथा उत्पादों का स्वामित्व करने के लिए श्रमिक तथा पूंजीपति दोनों वर्ग एक साथ होते हैं। उनकी एकता अर्थव्यवस्था के अधिग्रहण के सामूहिक विचार पर टिकी होती है। मजदूर अर्थ की प्राप्ति के लिए अपना श्रम बेचते हैं तथा पूंजीपति समस्त उत्पादित संपत्ति पर कब्जा करते हैं जो उनके लिए आर्थिक स्रोत होती है। दोनों वर्गों को होने वाली आय के अंतर का निश्चयन संपत्ति के स्वामी करते हैं (पटनायक, 2012)। संपत्ति का स्वामी तथा श्रम–शक्ति का स्वामी उद्यमी होता है। इन दोनों शक्तियों के स्वामी होने के नाते उसकी अय श्रम–शक्ति के बदले वेतन प्राप्त करने वाले वर्ग की तुलना में बहुत ज्यादा होती है। ये दो प्रकार के विनिमय दोनों वर्गों के बीच असमानताओं के आधार होते हैं।

विभिन्न पूंजीपतियों के बीच तथा विभिन्न संगठनों प्रतिस्पर्धा के कारण आर्थिक असमानता का पैदा होना और सदैव बने रहना आवश्यक है। आर्थिक असमानताएं केवल मालिकों और मजदूरों के बीच ही नहीं होतीं, परन्तु श्रमिकों तथा श्रम–बाजार में शामिल सभी स्त्री–पुरूषों के बीच, कौशल में दक्ष तथा कौशल रहित श्रमिकों के बीच, स्थायी अथवा अस्थाई रूप से, स्थानीय तथा प्रवासियों के बीच अस्तित्व में रहती हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में असमानताओं के बने रहने के कुछ कारण होते हैं। पूंजीवाद पूंजीपतियों तथा श्रमिक वर्ग के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न करता है। कार्ल मार्क्स का विचार है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में असमानताएं समाज में पहले से मौजूद वर्गों के आधार पर निर्मित होती हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूंजीवाद का आरंभ ही असमानता से होता है तथा उसका अंत भी असमानता के साथ होता है। इसलिए कुछ विद्धानों का यह कहना है कि 'असमानता पूंजीवाद की संरचनात्मक विशेषता है।'

गतिविधि 2

अपने पड़ोस में रहने वाले लोगों से बात करिए तथा कम से कम पांच वयस्क व्यक्तियों से उनके व्यवसाय के बारे में पूछिए।

'श्रमिक वर्ग के लोग तथा अर्थव्यवस्था में उनके योगदान विषय पर एक आलेख तैयार करिए। अपने अध्ययन केंद्र पर अपने मित्रों के साथ अपने आलेख पर चर्चा कीजिए।

10.6 पूंजीवाद के विभिन्न रूप

पूंजीवाद प्रायः दो प्रकार का होता है, निजी स्वामित्व वाला पूंजीवाद या उद्यमियों के स्वामित्व वाला पूंजीवाद और राज्य पूंजीवाद। यह वर्गीकरण स्वामित्व तथा पूंजी व वितरण या नियंत्रण के आधार पर किया गया है। निजी स्वामित्व वाला पूंजीवाद वह पूंजीवादी व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के संसाधन एवं वितरण उन लोगों के स्वामित्व एवं नियंत्रण में रहते हैं जो लाभ कमाने के उद्देश्य से व्यापार या उद्यम में अपनी पूंजी का निवेश करते हैं। दूसरी ओर राज्य पूंजीवाद से निजी पूंजीपति कई बाजारवादी अर्थव्यवस्था का नियंत्रण जुड़ा है, जिसमें राज्य उत्पादन के संसाधनों का मालिक नहीं होता है और उनपर नियंत्रण भी नहीं करता। एक अन्य प्रकार का पूंजीवाद भी होता है जिसमें उत्पादन एवं वितरण के संसाधनों पर निजी कंपनियों तथा राज्य का साझा स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है। इन तीन प्रकार की पूंजीवादी व्यवस्थाओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

10.6.1 निजी पूंजीवाद

निजी पूंजीवाद वह पूंजीवाद है जिसमें पूंजीवाद की वंशानुगत संरचनाओं तथा नौकरशाही निगम उत्पादन के संसाधनों तथा उत्पादन से मिलने वाले समूचे लाभ पर नियंत्रण करती हैं। समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में इस प्रकार का पूंजीवाद पूंजीवादी बाजारों की व्याख्या करता है। बाजार स्थलों कर निगमों का आधिपत्य रहता है और वे जनहित में कार्य नहीं करतीं। इसीलिये अनेक विद्वान यह मानते हैं, खासकर समाजशास्त्र के विद्वान, कि निजी पूंजीवाद लोकतंत्र के मानकों के खिलाफ काम करता है। निजी पूंजीवाद समाज के लोगों के बराबरी के शक्ति संबंधों के विचार को खारित करता है। यह केवल निजी निगमों के हितों के लिये काम करता है।

10.6.2 राज्य पूंजीवाद

राज्य पूंजीवाद पूंजीवाद का एक महत्वपूर्ण रूप है। तथा यह पूंजीवादी धारणा को स्पष्ट नहीं करता। यह ऐसा विचार उत्पन्न करता है कि पूंजी पर राज्य का नियंत्रण रहता है जबकि सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। राज्य पूंजीवाद निजी पूंजीवाद के अंतर्गत बाजार उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर नियंत्रण नहीं करता। राज्य पूंजीवाद में व्यापार की स्वतंत्रता तथा श्रमिकों की स्वतंत्रता को लेकर सरकार का हस्तक्षेप रहता है। इस प्रकार उत्पादन का नियंत्रण एवं विस्तार पुराने तथा नये प्रकार के आर्थिक बाजारों के माध्यम से राज्य के हाथों में होता है। राज्य पूंजीवाद का उपयोगितावादी विचार यह मानकर चलता है कि राज्य शासक वर्ग का एक ताकतवर हथियार है जो इस वर्ग के बाहर आते हैं वे उत्पीड़न और आधिपत्य के शिकार बनते हैं।

10.6.3 मिश्रित पूंजीवाद

मिश्रित पूंजीवाद निजी तथा राज्य पूंजीवाद का मिश्रण है। इस प्रकार का पूंजीवाद इस तरह की अर्थव्यवस्था को जन्म देता है जिसमें राज्य तथा निजी क्षेत्र पूंजी पर नियंत्रण रखते है। मिश्रित पूंजीवाद में दो अर्थव्यवस्थाओं के लक्षण मौजूद रहते हैं। इस अर्थव्यवस्थाओं के नाम हैं – बाजार आधारित अर्थव्यवस्था तथा नियोजित अर्थव्यवस्था। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था मांग और पूर्ति के नियमों पर निर्भर करती हैं। जिसमें

संसाधनों का वितरण मूल्य प्रणाली द्वारा तय किया जाता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में व्यक्ति चयन के लिये स्वतंत्र होते हैं। क्या उत्पन्न किया जायेगा और कौन कहाँ काम करेगा, इसका फैसला वे स्वयं लते है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। दूसरी ओर, नियोजित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के संसाधनों तथा उत्पादन पर एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह नियंत्रण करता है। उत्पादन का कार्य विभिन्न क्षेत्र मिलकर करते हैं तथा वितरण का दायित्व सरकार निभाती है।

नियोजित अर्थव्यवस्था को निर्देशित अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इस अर्थव्यवस्था में नियंत्रण करने वाला अधिकरण विशेष निर्देश जारी करता है जो सबको मानने होते हैं। कारण यह है कि यह एक नियोजित अर्थव्यवस्था है क्योंकि इसके के अंतर्गत लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन किया जाता है और सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक असमानताओं से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच असमानताएं दो स्तर पर मौजूद रहती हैं। उनके नाम बताइए।

.....

.....

.....

3) कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में असमानताएं ..... की निर्मित होती हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

4) निजी पूंजीवाद में राज्य उत्पादन के संसाधनों का स्वामी होता है तथा वही उन पर नियंत्रण रखता है। (सत्य)/ (असत्य)

5) राज्य पूंजीवाद में संसाधनों का स्वामित्व सरकार के अधीन होता है। (सत्य)/ (असत्य)।

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने पूंजीवाद की धारणा और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर विचार किया। कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद वह अर्थव्यवस्था हैं जिसमें दो महत्वपूर्ण वर्गों के बीच उत्पादन प्रक्रिया के मामले में आर्थिक साझेदारी होती हैं। पूंजीवाद के विविध आयामों की इस इकाई में व्याख्या की गई है। आर्थिक प्रणाली का विधिवत संचालन करने के लिये श्रम विभाजन की आवश्यकता होती है। इससे उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों ही पर्याप्त रूप से उपलब्ध होती हैं। इस इकाई में यह बात विस्तारपूर्वक समझाई गई है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रम विभाजन का आधार क्या होता है और श्रम किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है। इस इकाई में धन और आय के आधार पर दो वर्गों के बीच विद्यमान असमानताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। आगे इस इकाई में पूंजीवाद के विभिन्न प्रकारों पर भी चर्चा की गई है और कुल मिलाकर इस आधार पर पूंजीवाद के तीन प्रकार बताये गये हैं – निजी पूंजीवाद, राज्य पूंजीवाद तथा मिश्रित पूंजीवाद।

10.8 संदर्भ

एच. बर्नस्टीन (1988). केपिटालिज्म प्रैटी बुर्जुआज प्राडक्शन : *क्लास रिलेशन्स एण्ड डिवीजन ऑफ लेबर जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज,* 15 (2), 258–71।

कार्ल मार्क्स (1974), कैपीटल वोल्यूम II, सिक्सथ एडीशन, लंदन : *लारेंस एण्ड विश आर्ट*।

एस. के. मिश्रा (1988). *मॉडर्न इकॉनॉमिक्स* : नई दिल्ली, प्रगति पब्लिकेशन।

यू. पटनायक (2012). *केपिटलिज्म एण्ड द प्रडक्शन ऑफ पॉवर्टी : सोशल साइंटिस्ट,* 40 (2), 3–20।

जे. ए. शम्पीटर एण्ड आर. स्वीडबर्ग (एड) 1991 {1918}, *द इकॉनोमिक्स एण्ड सोश्योलॉजी ऑफ केपिटलिज्म,* प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रैस, प्रिसटन।

एन. स्मैल्सर एण्ड आए स्वेडबर्ग (1994), *द हेंडबुक ऑफ इकॉनॉमिक सोश्योलॉजी*– प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रैस एन.वाई. प्रिसंटन।

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) पूंजीपति वह है जो उत्पादन के संसाधनों का स्वामी होता है।

2) i) वेतन के बदले श्रम

ii) उत्पादन के संसाधनों पर निजी स्वामित्व

iii) विनिमय तथा लाभ प्राप्त करने के लिए वस्तुओं का उत्पादन करना।

3) मूल्य प्रणाली एक ऐसी प्रणाली हे जिसके माध्यम से मांग व पूर्ति के आधार पर उत्पादों या वस्तुओं की कीमत तय की जाती है।

4) असत्य

5) कौशल विकास और ज्ञान–वृद्धि

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक असमानता का अर्थ है दो वर्गों की आय में अंतर, जिसे संपत्ति के स्वामित्व द्वारा निर्धारित किया जाता है।

2) i) धन या समृद्धि की असमानता

ii) आय की असमानता

3) सामाजिक वर्ग निर्माण

4) असत्य

5) असत्य

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 समाजवाद*

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 समाजवाद की मूलवर्ती धारणा

11.3 भारत में समाजवाद का विकास

11.4 समाजवाद की पूर्वापेक्षा

11.4.1 समाज पर बल

11.4.2 समाजवाद पूंजीवाद को समाप्त करता है

11.4.3 समाजवाद समानता स्थापित करता है

11.4.4 समाजवाद संपत्ति पर निजी स्वामित्व को समाप्त करता हैं

11.5 समाजवाद के विविध रूप

11.5.1 राज्य समाजवाद

11.5.2 सैन्य समाजवाद

11.5.3 ईसाई समाजवाद

11.5.4 नियोजित समाजवाद

11.6 समाजवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण

11.6.1 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

11.6.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

11.6.3 अधिशेष मूल्यों का सिद्धांत

11.6.4 सर्वहारा की तानाशाही

11.7 सारांश

11.8 संदर्भ

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- समाजवाद की धारणा तथा उसके मूलवर्ती विचारों की व्याख्या,
- भारत में समाजवाद के विकास प्रक्रिया का वर्णन,
- समाजवाद की चार प्रमुख आवश्यकताओं का विवरण,
- समाजवाद के विविध रूपों की व्याख्या,
- कार्ल मार्क्स के परिप्रेक्ष्य में समाजवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण।

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पूंजीवाद के बारे में पढ़ा तथा पूंजीवाद की मूलवर्ती धारणाओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से तथा भारत में समाजवाद के विकास की दृष्टि से समाजवाद की व्याख्या की गई है। समानता, न्याय, सहयोग आदि के आदर्शों पर आधारित समाज की संरचना द्वारा पूंजीवाद को समाप्त करने के विचार को केंद्र में रखते हुए समाजवाद की विभिन्न आवश्यकताओं के बारे में भी इस इकाई में विस्तार से बताया गया है।

इस इकाई में समाजवाद के विविध रूपों का वर्णन किया गया है तथा समाजवाद के विभिन्न पहलुओं को समझाते हुए यह बताया गया है कि सामाजिक जीवन के विभिन्न मार्गों पर चलते हुए समाजवाद के महत्व को मानव समुदायों ने किस प्रकार महसूस किया है। इस इकाई में महान समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स के परिप्रेक्ष्य में समाजवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है।

समाजवाद के चार महत्वपूर्ण घटकों – द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, अधिशेष मूल्य तथा सत्ता को बुर्जुआ वर्ग के हाथों से छीनकर सर्वहारा वर्ग के हाथों में दिया जाना, आदि पर भी इस इकाई में विचार किया गया है।

11.2 समाजवाद की मूलवर्ती धारणा

समाजवाद एक ऐसी धारणा है जिसकी जड़ें सामाजिक–आर्थिक सिद्धांत में हैं। समाजवाद शब्द का इस्तेमाल 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पश्चिम में सेंट साइमन ने किया था। यद्यपि समाजवाद के लक्षणों में सामाजिक सहयोग, समाज के कमजोर वर्गों का विकास करना, सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना आदि 19वीं शताब्दी के पहले भी मौजूद थे, परन्तु विद्वानों का यही तर्क है कि समाजवाद की अवधारणा 19वीं शताब्दी में अस्तित्व में आई। सामान्यतः 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग दो विभिन्न व स्वतंत्र संदर्भों में किया जाता है – एक, मूल्यों तथा नैतिकता के संदर्भ में तथा इस तरह की कल्पना के अन्य सिद्धांतों के रूप में। इस प्रकार समाजवाद – स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, सामाजिक न्याय, शांति, वर्ग–विहीनता, सहयोग, प्रचुरता आदि मानवतावादी मूल्यों का एक साथ प्रतिनिधितव करता है। (नारायण, 1936) दूसरे, यह उन सामाजिक–राजनैतिक संस्थानों के व्यावहारिक पक्षों का प्रतीक है जो समाजवादी सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करते है। संस्थानों के स्तर पर समाजवाद पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विरोधी है। यह उत्पादन पर पूंजीवादी पतियों के स्वामित्व तथा नियंत्रण को स्वीकार नहीं करता, इसके स्थान पर वह उत्पादन प्रणाली पर जनता के स्वामित्व अथवा सामूहिक स्वामित्व का समर्थन करता है। समाजवादियों का यह आग्रह सामाजिक न्याय तथा समानता की अवधारणा पर आधारित है। समाजवादी सोच वाले लागे तथा जन–कल्याण से जुड़ी गतिविधियों में लगे लोग सामाजिक हितों के व्यापक संरक्षक माने जाते हैं परन्तु केवल इन दो खेमों के लोग ही समाजवाद का प्रतिनिधित्व नहीं करते। 'समाजवाद' शब्द से अनेक अर्थ जुड़े हैं। इस इकाई में हम समाजवाद का आर्थिक पक्षों के संदर्भों में तथा मानव कल्याण के संदर्भ में व्याख्या करेंगे। समाजवाद से जुड़ी समस्याओं पर विचार करने से पहले हम समाज विज्ञान के विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई समाजवाद को समझाने का प्रयास करेंगे। नारायण (1934) समाजवाद की 'सामाजिक पुनर्संरचना की प्रणाली' मानते हैं। उनके अनुसार समाजवाद

का अर्थ है – आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का सामजीकरण की प्रक्रिया द्वारा पुनर्संगठन करना। इसमें उत्पादन के साधनों का पुनर्गठन तथा सामूहिक स्वामित्व को बढ़ावा देना शामिल है, इससे निजी स्वामित्व स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। रसेल (1938) ने समाजवाद की परिभाषा करते हुए कहा है – 'समाजवाद' भूमि और पूंजी पर सामुदायिक स्वामित्व की वकालत करना समाजवाद है।'' सामुदायिक स्वामित्व से अभिप्राय 'राज्य के स्वामित्व के लोकतांत्रिक स्वरूप' से है जो सबसे साझेहित के लिए हो। 1951 में महात्मा गांधी ने कहा था – समाजवादी समाज वह समाज है जिसमें समाज के सब सदस्य समान होते हैं – कोई नीचा या ऊँचा नहीं होता''। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी परिभाषाओं का केंद्रीय अभिप्राय उत्पादन से होने वाले लाभ के स्वामित्व, नियंत्रण की प्रकृति और समानता के विचारों पर है। समाजवाद का सामान्यतः अर्थ यह है कि वस्तुओं का उत्पादन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होना चाहिए, व्यापार करने और लाभ प्राप्त करने के लिए नहीं। उत्पादन से आर्थिक लाभ प्राप्त करना पूंजीवादी व्यवस्था का लक्षण हैं। समाजवादी व्यवस्था में लेन–देन प्रतियोगिता आधारित नहीं रहता, वह सहयोग व सहकार आधारित हो जाता है। इस प्रकार के लेन–देन में अनेक स्तरों पर लोगों में मौजूद सभी प्रकार की असमानताएं समाप्त हो जाती हैं और लोगों को समान अवसर प्राप्त होते हैं।

11.3 भारत में समाजवाद का विकास

भारत में समाजवादी विचारधारा का अवतरण स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हुआ था, जैसा कि एशिया के अन्य देशों में भी हुआ। प्रथम विश्व युद्ध तथा द्वितीय युद्ध के दौरान उस समय सामाजिक तथा राजनैतिक संदर्भों में समाजवाद विकसित हुआ। यद्यपि अपने विकास की आरंभिक अवस्था में भारत में समाजवाद का विकास सरल नहीं रहा। भारत में अंग्रेजी शासकों की नाराजगी तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवादी दल द्वारा भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को समर्थन न मिलने के कारण समाजवाद को भारत में जड़ें जमाने में आसानी नहीं रही। सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स के उग्र विचारों ने भारतीय राष्ट्रवादियों का ध्यान अपनी ओर खींचा जो अपने देश में उन आर्थिक कठिनायों को उजागर करना चाहते थे जो अंग्रेजों ने भारत का धन ब्रिटेन में ले जाने की सतत प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न की थी। ऐसा करके उन्होंने अंग्रेजों की कमियों को ओर विश्व का ध्यान खींचने का प्रयास किया था।

जब गांधीजी भारत में अंग्रेंजी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन चला रहे थे उन दिनों भारत में समाजवाद की ओर रुझान तेजी से उभरा। उसी समय भारत में अनेक प्रभावशाली नेता सामने आये जैसे– आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत में समानता की भावना को बढ़ावा देने के लिए प्रचार किया। समाजवादी ज्यादातर आर्थिक समानता की बाते करते थे परन्तु भारत में अन्य अनेक लोग भी थे जिन्होंने सामाजिक समानता की बात उठाई जैसे बंकिम चन्द्र आदि। महात्मा गांधी का समाजवादी प्रतिमान नैतिक तथा सुधारात्मक घटकों पर आधारित था। गांधी जी ने अहिंसा पर जोर दिया था और यह तर्क दिया था कि पश्चिमी लोकतंत्र तथा साम्यवाद उन भारतीयों को स्वीकार्य नहीं है जो भारत में वास्तविक आजादी नहीं चाहते (महात्मा गांधी, 1951)। राष्ट्रवादी विचारकों के योगदान ने भारत में मौजूद आर्थिक कठिनाइयों को ऊँची आवाज में उठाया था। ऐसा करते समय उन्होंने समाजवादी की अवधारणा के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं की थी। भारत में

जो आर्थिक असंतोष उत्पन्न हुआ था उसने देश में समाजवादी आदेशों पर आधारित समाजवाद के विकास में सहयोग दिया।

11.4 समाजवाद की पूर्वापेक्षा

समाजवाद का प्रमुख उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त करना तथा समानता, न्याय, सहयोग, सार्वजनिक हित, कल्याणकारी रुझान पर आधारित सामज का निर्माण करना हैं। समाजवाद पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण को समाप्त करना चाहता है। समाजवादी समाज, जैसाकि उसके नाम से ध्वनित होता है, का निर्माण लोगों की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को केंद्र में रखते हुए समाज के लोगों द्वारा सामूहिक रूप से किया जा सकता है। ऐसे समाज के निर्माण के लिए जो कदम उठाये जाने की आवश्यकता उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है –

11.4.1 समाज पर बल

समाजवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की तुलना में समाज पर अधिक बल दिया जाता है। समाजवाद व्यक्तिगत स्तर पर हितों का संरक्षण नहीं करता, वह पूरे समाज के हितों का संरक्षण करता है। इसका अर्थ यह है कि समाजवाद समाज के सदस्यों में सहयोग की भावना पैदा करता है और उन सबसे सामूहिक हितों के लिए काम करता है। समाजवादी यह तर्क देते हैं कि वस्तुओं का उत्पादन समाज की आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए। समाजवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करने के लिए स्वतंत्र हैं। समाजवाद यह सुनिश्चित करता है कि लोग केवल उन्हीं चीजों का उत्पादन करें जो उनके लिए जरूरी और जिनके उत्पादन में उनका हित सधता है। इस प्रकार की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए समाज के सभी सदस्यों को समान अवसर दिये जाते हैं।

11.4.2 समाजवाद पूंजीवाद को समाप्त करता है

क्योंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में लोगों को एक दूसरे के नीचे काम करना पड़ता है, उनका शोषण होता है, वर्ग–संघर्ष होता हैं, असमान वितरण होता है तथा और भी अनेक प्रकार के व्यवधान सामने आते रहते हैं, इसीलिए कुछ लोग पूंजीवाद को समाजवाद का शत्रु मानते हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाले विरोधी घटक सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधक होते हैं।

समाज से इसे तमाम विरोधी अवयवों को दूर करने के लिए समाजवादियों ने पूंजीवाद की अवधरणा को नकार दिया है। इसके स्थान पर उन्होंने ऐसे घटकों को प्रोत्साहन दिया है जैसे – सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता, सामूहिक हित, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सहयोग आदि। (रसेल, 1938) समाजवाद ने निजी स्वामित्व की पद्धति को समाप्त किया है जो पूंजीवादी समाज में मौजूद थी। जैसे समृद्धों या अमीरों का मुनाफा कमाना तथा श्रमिकों तथा उनके श्रम पर आधिपत्य जमाने के उद्देश्य से उत्पादन के संसाधनों पर कब्जा करना।

गतिविधि 1

भारत के संविधान की भूमिका को पढ़िए, इसमें जो मूलभूत विचार दिये गये हैं उन पर एक आलेख तैयार कीजिए। इसमें किस तरह का समाज प्रतिष्ठापित हुआ है। अपने अध्ययन केंद्र पर पहुंचकर अपने अन्य साथियों के साथ इस आलेख पर चर्चा कीजिए।

11.4.3 समाजवाद समानता स्थापित करना है

पूंजीवाद ने समाज में अनेक प्रकार की असमानताओं को जन्म दिया है – जैसे आय, संपत्ति, अधिकार, लाभ आदि आधारित असमानताएं। समाजवाद ऐसी सभी असमानताओं को समाप्त कर देना चाहता है जिन्हें पूंजीवाद ने जन्म दिया है। समाजवादी व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा अथवा अधीनता के लिए कोई स्थान नहीं होता, इसलिए अमीन बनाम गरीब का विचार अस्तित्व में नहीं होता। उत्पादन के साधनों तथा श्रम–शक्ति के बीच सम्बंधों का निर्धारण सबके आर्थिक हितों को केंद्र में रखते हुए सामूहिक रूप से किया जाता है। अतः पारस्परिक निर्भरता बनी रहती है।

उत्पादन प्रणाली पर सामूहिक नियंत्रण रहता है और सब मिलकर ही उसे संचालित करते हैं और उससे सभी के हित साधे जाते हैं। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समाजवाद पूंजीवाद के ठीक विपरीत समानता की भावना पर आधारित व्यवस्था है।

11.4.4 समाजवाद संपत्ति के निजी स्वामित्व को समाप्त करता है

संपत्ति का अधिकार पूंजीवादी समाज में सदैव एक गंभीर समस्या रहा है। समाज पूंजीवाद ने समाज को वर्गों में बांटा है और वर्गों में बँटे समाज में कुछ लोगों के हाथों में ही सम्पत्ति का स्वामित्व सिकुड़ कर रह गया है। यद्यपि समाजवादी समाज के अभ्युदय ने निजी स्वामित्व को समाप्त करने का प्रयास किया है। इसने उत्पादन के संसाधनों तथा वितरण पर पूंजीपतियों के स्वामित्व को चुनौती है और उसे सामाजिक स्वामित्व में बदला है। समाजवादी समाज में स्वामित्व के प्रकार में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। वर्गों की अवधारणा से ऊपर उठकर सभी सदस्य संपत्ति के स्वामी बने हैं इससे जीवन पहले से बेहतर हुए हैं और उत्पादन की समतावादी प्रणाली का निर्माण हुआ है।

बोध प्रश्न 1

1) समाजवाद क्या है? समाजवाद की अपने शब्दों में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) गांधीजी का समाजवाद ..... पर आधारित है।

3) समाजवादी समाज के अस्तित्व के लिए क्या शर्तें हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) प्रतिस्पर्धा तथा अधीनता समाजवादी समाज की विशेषताएं हैं। सत्य ( ) / असत्य ( )

5) पूंजीवाद को किन घटकों के आकार पर नकारा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 समाजवाद के विविध रूप

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट हो चुका है कि समाजवाद की प्रमुख विशेषता उत्पादन के संसाधनों पर सुसंगठित समाज का नियंत्रण है। लेकिन समाजवाद की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं जो समाजवाद को अन्य विचारधाराओं से बिलकुल अलग और विशेष रूप में प्रस्तुत करती हैं, कुछ विद्वान इन्हें समाजवाद की महत्वपूर्ण विशेषताएं मानते हैं। इन विशेषताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजवाद अनेक रूपों में अतिस्त्व में आता है। इस भाग में समाजवाद के विविध रूपों का वर्णन किया जायेगा। वैसे तो समाजवाद के अनेक रूप हैं, परन्तु यहां हम समाजवाद के चार रूपों का वर्णन करेंगे। ये हैं – राज्य समाजवाद, सैन्य समाजवाद, ईसाई समाजवाद तथा नियोजित समाजवाद।

11.5.1 राज्य समाजवाद

राज्य समाजवाद का अर्थ है समाजवादी सोच का राज्य द्वारा लागू किया जाना। पूंजीवाद के प्रभाव में जो भेद–भाव की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हें ठीक करने के लिए राज्य या सरकार को कुछ ऐसे कदम उठाने पड़ते हैं जिससे सब के साथ न्याय हो। जैसे, कम वेतन शोषण तथा असमानताएं। राज्य समाजवाद का लक्ष्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना होता है। राज्य समाजवाद सामूहिकता के विचार पर आधारित होता है। ये एक सुसंगति समाज का विशेष आर्थिक तथा राजनैतिक प्रतिमान है। समाजवाद मात्र आर्थिक सिद्धांत नहीं है, यह न्याय और समानता के विचार पर आधारित एक नैतिक तथा कल्याणकारी आंदोलन है। राज्य–समाजवादी तर्क देते हैं कि उत्पादन प्रणाली से शोषण को समाप्त करने तथा सामाजिक हितों की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक है कि विधायी शक्तियों के माध्यम से राज्य उत्पादन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करे। इससे दबे–कुचले पिछड़े तथा

साधनहीन लोगों के हित साधेंगे। ऐसा करने के लिए उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीकरण जरूरी है। इससे श्रमिक को समान रूप से उत्पादन का लाभ मिलेगा। राज्य समाजवाद लागू करने वाला राज्य समानता लाने और उतपादन संसाधनों के समान वितरण के लिए एक अंग के रूप में कार्य करता है। ऐसा करने के पीछे राज्य का उद्देश्य समाज के कमजोर वर्ग को ऊपर उठाना होता है।

गतिविधि 2

संरक्षित भेदभाव की समस्या पर दो सरकारी सेवारत कर्मचारियों का साक्षात्कार करिए। भारतीय समाज में समाजवाद की धारणा पर उनके क्या विचार हैं, यह जानने का प्रयास कीजिए। इस साक्षात्कार को केंद्र में रखते हुए अपने अध्ययन केंद्र में अपने मित्रों के साथ चर्चा कीजिए।

11.5.2 सैन्य समाजवाद

सशस्त्र सैनिक युद्ध काल में मिलकर युद्ध करते हैं और उनका सामूहिक लक्ष्य जीत हासिल करना होता है। ऐसी सामूहिकता जिसके चरित्र में होती है उस समाजवाद को सैन्य समाजवाद कहा जाता है। सैन्य समाजवाद में नागरिकों के आय के स्तर और सामाजिक स्तर सशस्त्र सैन्य समूह की तर्ज पर निर्धारित होते हैं। उत्पादन के संसाधनों पर निजी स्वामित्व की दावेदारी जैसी कोई चीज नहीं होती। युद्ध जैसे किसी सैनिक का निजी उद्देश्य नहीं होता, उसी तरह सैन्य समाजवाद में नागरिकों का उत्पादन में निजी लक्ष्य नहीं होता। यदि सैनिक अपने निजी हितों को केंद्र रखकर युद्ध करें तो युद्ध की गरिमा ही गिर जायेगी।

सैनिक मिलकर कैंप निर्मित करते हैं और उनमें सामूहिक रूप से रहते हैं – इस व्यवस्था को सैनिक समुदाय की व्यवस्था को सैनिक समुदाय की व्यवस्था कहा जा सकता है। जीवन सम्बंधी गतिविधियों में भी सामूहिक होती है, यहाँ तक कि उनके पारिवारिक मामलों में भी सामूहिकता का शानदार उदारहरण देखने को मिलता है।

11.5.3 ईसाई समाजवाद

ईसाई समाजवाद ईसाई समाज की सामूहिक आध्यात्मिक पद्धति में परिलक्षित होता है। यह एक तरह से राज्य समाजवाद जैसा ही होता है। इसी आधार पर विद्वान तर्क देते हैं कि राज्य समाजवाद तथा ईसाई समाजवाद में इतनी समानताएं है कि उन्हें अलग–अलग देखना मुश्किल हो जाता है। यह पता लगाना भी मुश्किल हो जाता है कि समाजवादी व्यवस्था में रहने वाला कोई नागरिक राज्य समाजवाद की श्रेणी में आता है या ईसाई समाजवाद की श्रेणी में ईसाई समाजवाद इस विचार पर केंद्रित रहता है कि अर्थव्यवस्था में लाभ कमाने की प्रक्रिया लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है – वह व्यवस्था में कहीं बाधक नहीं बनती। कीमतों और वेतनों का बंटवारा इस आधार पर होता है कि सबको समान रूप से समुचित उपलब्धि हो जाय और सबकी जरूरतें पूरी होती रहें।

11.5.4 नियोजित समाजवाद

पूंजीवादी अर्थ–व्यवस्था में पूंजीपति उत्पादन प्रक्रिया से इसलिए जुड़ता है कि उसे निजी तौर पर लाभ मिले। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा भी पहले से ही मौजूद

रहती है परन्तु इसमें पारस्परिक सहयोग का अभाव रहता है। परन्तु नियोजित समाजवाद से उत्पादन के संसाधनों पर जनता का सामूहिक स्वामित्व होता है। समाजवाद के नियोजित होने का अर्थ है उत्पादन का नियोजित होना। नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था से उत्पादन का समन्वयन तथा वितरण राज्य द्वारा निर्धारित ढंग से किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति को केंद्र में रखकर किया जाता हैं। (सहाय, 1986) उत्पादन से प्राप्त होने वाले उत्पादों का विवरण उस योगदान के आधार पर होता है जो उत्पादन प्रक्रिया में लोग करते हैं। नियोजित समाजवाद के अंतर्गत सरकार कुछ खास उद्देश्यों को केंद्र में रखकर काम करती है। उन्हें पूरा करने का दायित्व सरकार योजनाबद्ध तरीके से निभाती है। सरकार की योजनाओं में अर्थव्यवस्था से सम्बंधित सभी समस्याएं शामिल होती है। भारत में योजना बनाने वाली संस्था को योजना आयोग कहा जाता है, परन्तु अब इसका नाम बदलकर 'नीति आयोग' कर दिया गया है।

11.6 समाजवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि बुर्जुआ समाज की समाप्ति करके समाजवाद अपने आपको विकसित करता है। समाजवाद के वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धिति अभी तक ठीक से विकसित नहीं हो पाई हैं। समाजवादी वैज्ञानिक समाजवाद के विज्ञान को अभी तक अगली अवस्था तक नहीं ले जा पाये हैं। उन्होंने आर्थिक प्रणाली की अवहेलना की है तथा विभिन्न आर्थिक संस्थानों की कार्य–पद्धतियों में श्रम विभाजन की प्रक्रिया की ठीक से शामिल नहीं किया है तथा निजी सम्पत्ति के स्वामित्व।

कार्ल मार्क्स का समाजवाद एक वैज्ञानिक समाजवाद है क्योंकि मार्क्स का समाजवाद, जिसे वैज्ञानिक समाजवाद भी कहा जाता है, उसमें तीन मूलवर्ती श्रेणियाँ शामिल है – अर्थशास्त्र, राजनीति तथा दर्शन। मार्क्स ने श्रम सिद्धांत के मूल के आधार पर अधिशेष मूल्य का सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। राजनैतिक दायरे में मार्क्स और एंजिल्स ने वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को समझा था तथा उसका विश्लेषण किया था। पूंजीवादी व्यवस्था में वर्ग संघर्ष के अनिवार्य रूप में मौजूद रहता है। मार्क्स तथा एंजिल्स सर्वहारा के एक दलीय शासन द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते थे। दर्शन के क्षेत्र में मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए एंजिल्स के द्वंद्वात्मकर्ता के सिद्धांत का सहारा लिया था। कार्ल मार्क्स की समाजवादी अवधारणा के आधार पर ऊपर बताई गई तीन श्रेणियों में से चार मूलभूत घटकों को चिन्हित किया जा सकता है। ये हैं – द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, अधिशेष मूल्य का सिद्धांत, ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा सर्वहारा की तानाशाही। इन चारों घटकों की व्याख्या नीचे की जा रही है।

11.6.1 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कार्ल मार्क्स तथा एंजिल्स की विचारधारा है। यहां भौतिकवाद का अभिप्राय भौतिक संसार से है, जो पूरी तरह वस्तुपरक है। यह वस्तुपरकता किसी आध्यत्मिक या मानसिक प्रक्रिया पर निर्भर नहीं है।

मार्क्स और एंजिल्स यह मानकर चलते हैं कि विचार केवल भौतिक रूप में ही प्रकट हो सकते हैं। इन दोनों विचारकों का भौतिकवाद आदर्शवाद का विरोधी है। एक ऐसा सिद्धांत जो मस्तिष्क और आत्मा (चेतना) अथवा मस्तिष्क और चेतना के अस्तित्व को

भौतिक पदार्थ के बिना स्वीकार नहीं करता, यह बात बड़ी अटपटी लगती है। परिणामस्वरूप उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि भौतिक दृष्टि से देखें तो पदार्थ को आदर्श के साथ एकीकृत करने से भ्रम व अनिश्चित की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक के सिद्धांत ने हीगल की द्वंद्वात्मकता की अवधारणा को आकार दिया। द्वंद्वात्मकता के ये दोनों रूप अंतिम वास्तविकता के स्तर पर एक दूसरे से भिन्न हैं। हीगल चेतना/आत्मा अथवा कारण को अंतिम वास्तविकता मानता है, जबकि कार्ल मार्क्स गतिमान भौतिक पदार्थ को अंतिम वास्तविकता मानता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, इस प्रकार एक व्यवस्थित या संगठित समाज की बात करता है जो वर्ग रहित है तथा वर्ग के आधार पर इस समाज में किसी का शोषण नहीं किया जा सकता।

11.6.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

ऐतिहासिक भौतिकवाद एक सिद्धांत है जिसके अनुसार उत्पादन के साधनां के संगठन और विकास का निश्चयन उसकी भौतिक स्थितियों के आधार पर किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि वस्तुओं के उत्पादन के तरीकों का समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है और धीरे–धीरे समाज बदल जाता है। यह एक तरह से समाज के इतिहास में आर्थिक रूप से बदलाव लाने के उद्देश्य से किया जाने वाला एक पद्धति गत हस्तक्षेप है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इस विचार के साथ आरंभ होता है कि आर्थिक गतिविधियों के आधार सांस्कृतिक, वैधानिक, राजनैतिक आदि अनेक संस्थान हैं। यह सिद्धांत एक सरल विचार पर आधारित है कि मनुष्य को जिन्दा रहने के लिए उत्पादन करना चाएिह। जीवन चलाने के लिए जितनी भी गतिविधियों की जाती है। उनमें उत्पादन सबसे महत्वपूर्ण है। उन सभी सामाजिक–राजनैतिक परिवर्तनों के लिए जो समाजवादी समाज में होते हैं। उत्पादन प्रणाली कारण के रूप में अवस्थित होती है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की अंतर्निहित भावना मुख्य रूप से मनुष्य जाति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना है, किसी विज्ञान, कला, धर्म, राजनीति आदि का अनुशरण करना नहीं है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में भोजन, जल, कपड़े, मकान आदि हैं। यह विचार प्रत्यक्ष रूप से पूंजीवादी समाज को समाजवादी समाज में बदलने का आधार है, ठीक उसी तरह जिस तरह दासता को सामन्तवाद द्वारा बदला गया और सामन्तवाद का स्थान बाद में पूंजीवाद ने ले लिया। पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन के लिए उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों के आधिपत्य के अधिकार को समाज के आधिपत्य – सबके आधिपत्य में बदलना होगा। इससे शासन करने वाले वर्ग की अधिग्रहण आदि की शक्तियो, विशेषाधिकारों तथा शोषण का भी अंत हो जायेगा।

11.6.3 अधिशेष मूल्यों का सिद्धांत

अधिशेष मूल्यों का विवरण कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'दास केपिटल' में दिया हैं। यह सिद्धांत समाज के सभी वर्गों को दो वर्गों में समेट लेता है। इसका अर्थ यह है कि उन लोगों का वर्ग जिनका सम्पत्ति पर स्वामित्व होता है और सर्वहारा वर्ग अर्थात मजदूर वर्ग मार्क्स का तर्क है कि इन दोनों वर्गों के निहित स्वार्थ एक दूसरे से अलग और विपरीत होते हैं। इसी से दोनों वर्गों के बीच वर्ग–संघर्ष का जन्म होता है .... और अंततः पूंजीपति वर्ग का खात्मा हो जाता है। अधिशेष मूल्य श्रमिकों द्वारा किये गये कार्यों के उस अंश का मूल्य है जिसका भुगतान पूंजीपति उसे नहीं करता। यही

पूंजीपतियों का मुनाफा कहलाता है। इससे यह पता लगता है कि एक वर्ग का लाभ वस्तुतः दूसरे वर्ग की हानि होती है। पूंजीपति अधिक काम के बदले मजदूरों को कम वेतन देता है, वह उसे पूरा भुगतान नहीं करता और मजदूर पूंजीपति के लिए काम करते रहते हैं। इस तरह अधिशेष मूल्य उत्पादित वस्तुओं की कीमत तथा उत्पादन के बदले श्रमिकों को किए गये भुगतान का अंतर है। अधिशेष मूल्य पर पूंजीपतियों द्वारा किया गया अधिकार पूंजीपतियों को शोषक की भूमिका में खड़ा करता है और पूंजीवादी व्यवस्था शोषण मूलक व्यवस्था बन जाती है। कार्ल मार्क्स द्वारा समूची पूंजीवादी व्यवस्था को शोषण करने वाली व्यवस्था साबित करने का विचार इसी सिद्धांत (अधिशेष मूल्यों का सिद्धांत) में छिपा है।

11.6.4 सर्वहारा की तानाशाही

सर्वहारा का तानाशाही का विचार समाजवादी समाज के निर्माण के लिए बुर्जुआ समाज से शक्ति को छीनकर 'सर्वहारा को देना है। पूंजीवादी समाज को समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष द्वारा ही बदला जा सकता हैं इसके लिए पूंजीपतियों के हाथों से शक्ति का श्रमिकों में स्थानांतरण जरूरी है। श्रमिक वर्ग इस शक्ति का इस्तेमाल तब तक करता रहता है जब तक अन्य सभी वर्ग भी समाप्त नहीं हो जाते।

सर्वहारा की तानाशाही कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर टिकी होती है। पहला पक्ष यह है कि इसे क्रांति का उपकरण माना जाता हैं। क्रांति का इस्तेमाल वर्ग रहित समाज का निर्माण करने के लिए किया जाता है। यह केवल सर्वहारा की तानाशाही से ही संभव है। क्रांति के द्वारा सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग की शक्ति को निरस्त कर सकता है। यह समाजवाद के लिए रास्ता तैयार करता है। परन्तु समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य सर्वहारा की तानाशाही द्वारा ही हासिल किया जा सकता है। दूसरा पहलू है पूंजीपतियों बुर्जुआओं का लोकतंत्र। बुर्जुआओं के लोकतंत्र का समझने के लिए सर्वहारा के लोकतंत्र को समझना जरूरी है। पूंजीवाद की जुड़े असमानता के विचार में निहित हैं, और समाजवाद के केंद्र में समानता का विचार होता है तथा वह शोषण की समाप्ति को अपना लक्ष्य मानता है की तानाशाही तीसरा पहलू है जो शोषण की समाप्ति के लिए जरूरी है।

बोध प्रश्न 2

1) राज्य समाजवाद का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

2) ईसाई समाजवाद ..... और ..... का मिश्रण है।

3) नियोजित समाजवाद में 'नियोजन' का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

4) वैज्ञानिक समाजवाद की तीन मूलभूत श्रेणियों के नाम बताइए जो मार्क्स के समाजवाद में पाई जाती हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

5) समाजवादी समाज में सर्वहारा की तानाशाही के विचार की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

इस इकाई में हमने समाजवाद की सामान्य धारणाओं की व्याख्या की और भारत में समाजवाद के विकास का संक्षेप में वर्णन किया। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए कुछ पूर्व शर्तें हैं। इस इकाई में इसकी चार पूर्व शर्तों का उल्लेख किया गया है। समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के विद्वान समाजवाद के अनेक रूपों की बात करते हैं। इस इकाई में समाजवाद के चार महत्वपूर्ण रूपों को वर्णन किया गया है जो समाजवाद के विविध पहलुओं से अवगत कराते हैं। कार्ल मार्क्स की समाजवादी धारणा को वैज्ञानिक समाजवाद बताते हुए इस इकाई में चार मूलभूत घटकों की व्याख्या की गई है। ये चारों घटक समाजवाद के विकास का रास्ता तैयार करते हैं। ये हैं – द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, अधिशेष मूल्य का सिद्धांत और सर्वहारा की तानाशाही। मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद को समझाने के लिए इस इकाई में चारों घटकों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

11.8 संदर्भ

टी.बी. बोटमोर (1990). *द सोशल इकॉनोमी : थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस.* न्यूयार्कःद गिलफोर्ड प्रैस।

एम. के. गांधी (1951). *टुवार्डस नॉन वायलेंट सोशलिज्म* (सम्पादन : भारतन कुमारप्पा) अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।

जे. पी. नारायण (1936) *'व्हाई सोशलिज्म'.* बनारसःआल इंडिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी।

जे. रोमर (1994). *ए फ्यूचर फॉर सोशलिज्म.* हारवर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस।

बी. रसेल (1938). *'रोड्स टू फ्रीडम.* लंदनःएलीन एण्ड अनविन।

के. सहाय (1986) *सोशलिस्ट मूवमेंट इन इंडिया.* दिल्लीःक्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) समाजवाद का अर्थ है समाज का संशोधन (सुधार) जो समानता, न्याय, सहयोग और सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित है तथा जिसमें शोषण के लिए कोई स्थान नहीं है।

2) सत्याग्रह

3) (i) समाज पर बल

(ii) पूंजीवाद की समाप्ति

(iii) समानता को प्रोत्साहन

(iv) संपत्ति पर निजी स्वामित्व की समाप्ति।

4) असत्य

5) पूंजीवाद को नकारने के पीछे प्रमुख घटक हैं – परवशता, दमन, वर्ग–संघर्ष, असमान वितरण तथा संपत्ति का निजी स्वामित्व आदि।

बोध प्रश्न 2

1) राज्य समाजवाद का अर्थ है – पूंजीवादी समाज में मौजूद सभी भेद–भाव पूरी प्रथाओं की समाप्ति में राज्य का शामिल होना।

2) दैवीय तथा समाजवाद

3) नियोजित समाजवाद में नियोजन से तात्पर्य है – समाज के सभी लोगों की आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति के लिए उत्पादन की प्रक्रिया को नियोजित ढंग से संचालित करना।

4) अर्थशास्त्र, राजनीति तथा दर्शन।

5) सर्वहारा की तानाशाही का मतलब है – पूंजीपति वर्ग से सत्ता का सर्वहारा वर्ग में स्थानातंरण ताकि समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सके।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY